॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

फरवरी २०१६

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५४
अंक २

वार्षिक १००/– **एक प्रति १२/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ४६०/–
१० वर्षों के लिए – रु. ९००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएं

विदेशों में – वार्षिक ३० यू. एस. डॉलर,
५ वर्षों के लिए १२५ यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)

संस्थाओं के लिये –
वार्षिक रु. १४०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

१. सरस्वती वन्दना ५३
२. पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) ५३
३. विविध भजन
सरस्वती वन्दना (स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती) प्रभु दरशन को तड़पत मनवाँ (स्वामी प्रपत्त्यानन्द) बसो मेरे नैनन में भगवान (स्वामी रामतत्त्वानन्द) हमारे श्याम सुन्दर नन्दलाल (पं. शिवनारायण शर्मा) मेरी सारदा माँ (जितेन्द्र कुमार तिवारी) ५४
४. सम्पादकीय : भगवान के शान्तिपद से तप्तजीवन में शान्तिप्राप्ति ५५
५. कर्म और उसका रहस्य (स्वामी विवेकानन्द) ५६
६. धर्म-जीवन का रहस्य (८/४) (पं. रामकिंकर उपाध्याय) ५७
७. सारगाछी की स्मृतियाँ (४०) (स्वामी सुहितानन्द) ६०
८. स्वामी ब्रह्मानन्द के संस्मरण (स्वामी परमेश्वरानन्द) ६२
९. स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त (सत्यकाम की कहानी) ६४
१०. त्रिमूर्ति वन्दना (रामकुमार गौड़) ६५
११. ईश्वरीय मातृत्व की प्रतीक माँ सारदा देवी (स्वामी श्रीकरानन्द) ६६
१२. आध्यात्मिक जिज्ञासा (२) (स्वामी भूतेशानन्द) ६९
१३. मीरा : दर्शन और वाणी (डॉ. रामनिवास) ७१
१४. साधना की अद्भुत प्रणाली – केनोपनिषद् (१४) (स्वामी आत्मानन्द) ७४
१५. बच्चों का आंगन ७६
१६. महापुरुषों के त्यागमय जीवन से हम भी कुछ सीखें ७७

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

१७. साधक-जीवन कैसा हो? (१४)
(स्वामी सत्यरूपानन्द) ७८
१८. रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का
दिव्य जीवन (२) (स्वामी भास्करानन्द) ८०
१९. नदी नर्मदा की बही जा रही है (रवीन्द्र भारती) ८२
२०. मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प
(डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर) ८२
२१. प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका (श्रीशंकराचार्य) ८३
२२. भगिनी निवेदिता : ईश्वर के चरणों में
दो बार निवेदित (स्वामी तन्निष्ठानन्द) ८४
२३. मित्रता का आदर्श (अरुण चूड़ीवाल) ८५
२४. भारत की ऋषि परम्परा (२)
(स्वामी सत्यमयानन्द) ८६
२५. धन का मूल्य ८७
२६. काशी के बनबाबा (स्वामी अप्रमेयानन्द) ८८
२७. निराला पर श्रीरामकृष्ण का प्रभाव
(अवधेश प्रधान) ९०
२८. लाटू महाराज का अद्भुत जीवन ९४
२९. स्वामी त्रिगुणातीत और उद्बोधन पत्रिका ९४
३०. समाचार और सूचनाएँ ४५

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर दिये गए मन्दिर का चित्र पश्चिम बंगाल स्थित जयरामवाटी का है। यह स्थान श्रीमाँ सारदा देवी (१८५३-१९२०) का जन्म-स्थान है। मन्दिर की प्रतिष्ठा १९ अप्रैल, १९२३ को श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य स्वामी सारदानन्द के करकमलों द्वारा हुई। यह मन्दिर ठीक श्रीमाँ के जन्म-स्थान पर स्थापित किया गया है। मन्दिर के अन्दर श्रीमाँ की संगमर्मर की अतीव सुन्दर मूर्ति है, जिसकी स्थापना ८ अप्रैल, १९५४ को हुई। मन्दिर के गर्भ-गृह में श्रीमाँ के पूत अस्थि-अवशेष और अन्य स्मृति चिह्न संगृहीत हैं। श्रीमाँ की नित्य पूजा भोग-राग सहित होती है। मन्दिर के निर्माण के समय की गई खुदाई के समय एक शिवलिंग प्राप्त हुआ था, जिसकी प्रतिदिन पूजा की जाती है। श्रीमाँ सारदा को रामकृष्ण संघ की संघ-जननी कहा जाता है। देश-विदेश से अनेक भक्त, पर्यटक आदि ग्राम्य परिवेश में स्थित श्रीमाँ के दर्शन के लिए आते हैं और शान्ति प्राप्त करते हैं।

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी के दौरान भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ५२ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर यह 'ज्योति' भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाएँ पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें। – **व्यवस्थापक**

फरवरी माह के जयन्ती और त्योहार

०९	**वल्लभाचार्य जयन्ती**
१०	**स्वामी ब्रह्मानन्द**
१२	**स्वामी त्रिगुणातीतानन्द**
१२	**वसन्त पंचमी**
१४	**नर्मदा जयन्ती**
२२	**स्वामी अद्भुतानन्द**

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५४ फरवरी २०१६ अंक २

सरस्वती वन्दना

या कुन्देन्दु-तुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता ।
या वीणा वरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना ।
या ब्रह्माच्युत-शङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ।।

शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं
वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम् ।
हस्ते स्फाटिकमालिकां च दधतीं पद्मासने संस्थितां
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम् ।।

वीणाधरे विपुल-मङ्गलदानशीले
भक्तार्तिनाशिनि विरिञ्चिहरीशवन्द्ये ।
कीर्तिप्रदेऽखिलमनोरथदे महार्हे
विद्याप्रदायिनि सरस्वति नौमि नित्यम् ।।

श्वेताब्जपूर्णविमलासनसंस्थिते हे
श्वेताम्बरावृतमनोहरमञ्जुगात्रे ।
उद्यन्मनोज्ञसितपङ्कजमञ्जुलास्ये
विद्याप्रदायिनि सरस्वति नौमि नित्यम् ।।

सरस्वत्यै नमो नित्यं भद्रकाल्यै नमो नमः ।
वेदवेदान्तवेदाङ्गविद्यास्थानेभ्य एव च ।।
सरस्वति महाभागे विद्ये कमललोचने ।
विद्यारूपे विशालाक्षि विद्यां देहि नमोऽस्तुते ।।

पुरखों की थाती

मृतः प्राप्नोति वा स्वर्गं शत्रुं हत्त्वा सुखानि वा ।
उभावपि हि शूराणां गुणावेतौ सुदुर्लभौ ।।४८७।।

– वीरों के ये दोनों गुण बड़े दुर्लभ हैं। या तो वह युद्ध में मरकर स्वर्ग जाता है अथवा शत्रुओं को मारकर सुख पाता है।

मृदुना दारुणं हन्ति, मृदुना हन्त्यदारुणम् ।
नासाध्यं मृदुना किंचित् तस्मात् तीव्रतमं मृदु ।।४८८।।

– मृदुता के द्वारा कठोरता और अकठोरता दोनों का नाश होता है। मृदुता के लिये कुछ भी असाध्य नहीं है, इसलिये मृदुता ही सर्वाधिक प्रभावशालिनी है। (महाभारत)

यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत् ।
एवं पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति ।।४८९।।

– जैसे केवल एक पहिये से रथ नहीं चलता, वैसे ही बिना पुरुषार्थ के भाग्य भी सिद्ध नहीं होता।

यस्मिन्देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धवः ।
न च विद्यागमः कश्चित्तं देशं परिवर्जयेत् ।।४९०।।

– जिस स्थान पर न सम्मान मिलता हो, न आजीविका, न कोई मित्र और न विद्या – उस स्थान को त्याग देना चाहिये।

यः कुलाभिजनाचारैः अतिशुद्धः प्रतापवान् ।
धार्मिको नीतिकुशलः स स्वामी युज्यते भुवि ।।४९१

– शासक ऐसा होना चाहिए, जो कुलाचार तथा लोकाचार का पालन करके अतिशय पवित्र हो गया हो, प्रतापी हो, धर्मात्मा हो और नीति का ज्ञाता हो।

विविध भजन

सरस्वती वन्दना

स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती

जय जगदीश्वरी मात सरस्वती,
शरणागत प्रतिपालनहारी ।
चन्द्रबिम्ब सम वदन विराजे,
शीश मुकुट माला गल धारी ।
वीणा वाम अंग में शोभे,
सामगीत ध्वनि मधुर पियारी ।।
श्वेत वसन कमलासन सुन्दर,
संग सखी शुभ हंस सवारी ।
ब्रह्मानन्द मैं दास तुम्हारो,
दे दरसन परब्रह्म दुलारी ।।

प्रभु दरशन को तड़पत मनवाँ

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

प्रभु दरशन को तड़पत मनवाँ
चाहे हरि-दर्शन मनवाँ ।
भगति विराग लायो नहीं मन में
रहि-रहि दुख सतावे मनवाँ ।।
लोभ-मोह हिय सालत मोहीं
आज प्रभु क्यों बने निर्मोही ।
विषय प्रसंगे भुलावे मनवाँऽऽऽ
प्रभु दरशन ....
एक अखण्ड पूर्ण परमेश्वर,
जग-पालक जग-रक्षक ईश्वर ।
महिमा वेद सुनावे मनवाँऽऽऽ
प्रभु दरशन ....
भव-बन्धन के काटनहारे,
पाप-ताप-दुख नाशनहारे ।
ऋषि-मुनि-वेद बतावे मनवाँऽऽऽ
प्रभु दरशन ....
छोड़ विषय धर प्रभु पद कमल,
हो शरणागत भक्ति सुविमल ।
प्रभु से प्रेम लगाओ मनवाँऽऽऽ
प्रभु दरशन ....

बसो मोरे नैनन में भगवान

स्वामी रामतत्त्वानन्द

बसो मोरे नैनन में भगवान ।
रामकृष्ण भवभयहारी तुम हो कृपानिधान ।।
भावमग्न मुखमंडल ज्योति, चहुँ दिशि आलोकमान ।
अँखियन प्रेम पियूष बहावत, अधर अनन्द मुस्कान ।।
गौर वरण तन, त्याग तप्त मन, पहन श्वेत परिधान ।
मेरे हृदय कमल विराजो, कृपासिन्धु भगवान ।।
आनन्दकन्द मकरन्द मधुप का, मन करो जीभर पान ।
'रामदास' नित नीर बहावत, करत प्रभु गुणगान ।।

हमारे श्याम सुन्दर नन्दलाल

पं. शिवनारायण शर्मा

हमारे श्याम सुन्दर नन्दलाल ।।
नीलाम्बर छबि तन को शोभित,
पलकें कुटिल करें मन मोहित ।
लोचन ललित विशाल ।।
हमारे श्याम सुन्दर नन्दलाल...
कटि पीताम्बर कनक किनारी,
किंकिणि की ध्वनि लागे प्यारी ।
गले मुक्तन की माल ।।
हमारे श्याम सुन्दर नन्दलाल...
चरण कमल दल अरुण मनोहर,
नख छवि मणिमाला-सी सुन्दर ।
मन मोहन गोपाल ।। हमारे श्याम ..

मेरी सारदा माँ

जितेन्द्र कुमार तिवारी

हूँ तेरी सन्तान मेरी सारदा माँ ।
चाहता तव भक्ति मेरी सारदा माँ ।।
मूर्ति करुणा की सदा से आपकी है ।
दें चरण अनुरक्ति मेरी सारदा माँ ।।
जगत का जंजाल मुझको है फँसाता ।
चाहता दे मुक्ति, मेरी सारदा माँ ।।
मोह से मैं मुक्त होना चाहता हूँ ।
दे नहीं आसक्ति मेरी सारदा माँ ।।
कामनाएँ हैं कि मुझे खींचती हैं ।
मुक्ति हित दें शक्ति मेरी सारदा माँ ।।

सम्पादकीय

भगवान के शान्तिपद से तप्तजीवन में शान्तिप्राप्ति

मानव जीवन त्रितापों से सदा दग्ध होता रहता है। त्रिगुणात्मिका मायाशक्ति अपनी लीला से वशीभूत कर कभी दुख और कभी सुख से उसे वशीभूत करती है। वह कभी सुख से सुखी और दुख से पीड़ित करती रहती है। मोहयुक्त विमूढ़ प्राणी इन्द्रियासक्त होकर विषयानुवर्तन कर हमेशा दुख पाता है। भ्रमवश वह कभी दुख को ही सुख मानकर प्रसन्न हो जाता है। नहीं तो, सदा उसी ज्वाला में जलते रहने की नियति को मानकर जीवन व्यतीत करता रहता है और एक दिन काल के पाश में आबद्ध होकर पुनर्जन्म का भागी बन जाता है। क्या यही मानव जीवन है? क्या मानव इसी के लिये अभिशप्त है? क्या मानव-जीवन की अन्य कोई गति नहीं है?

इसी दुख से दुखित होकर संतप्त चित्त से महान कवि विद्यापति जी ने सुख के मार्ग का अन्वेषण करना प्रारम्भ किया। वे अपने प्राणेश इष्ट भूतभावन भगवान शिव से व्याकुल होकर प्रार्थना करते हुए कहते हैं –

कखन हरब दुख मोर हे भोलानाथ !
कखन हरब दुख मोर !
दुख में जन्म भइले, दुख में ही रहिलो,
कबहूँ सुख नाहीं भेल हे भोलानाथ !
कखन हरब दुख मोर !

– 'हे भोलानाथ, हे भगवान शंकर ! आप कब मेरे दुखों का हरण करेंगे ! हे प्रभु मेरा दुख में ही जन्म हुआ, दुख में मेरे दिन बीते, कभी भी मेरे जीवन में सुख नहीं मिला। हे प्रभु ! अब तो कृपा कीजिए। हे भोलानाथ आप कब मेरे दुखों का हरण करेंगे?

कोई-कोई विवेकी पुरुष दुखमुक्ति हेतु आकुल होकर मुक्ति मार्ग की प्रत्याशा में लोक भ्रमण करते हैं और सुयोग्य सुहृद व्यक्ति से उपयुक्त मार्ग प्राप्त कर दुखों से मुक्त होने की साधना कर उनसे मुक्त हो जाते हैं तथा जीवन में शान्ति का अनुभव करते हैं। लोग दुखों से मुक्ति तो चाहते हैं, शान्ति प्राप्त करना चाहते हैं, किन्तु उसके लिये जिन वस्तुओं का त्याग करना है, उसका त्याग करना नहीं चाहते, उसके लिये जो मूल्य चुकाना है, वह मूल्य चुकाना नहीं चाहते। इसीलिये वे सदा दुख से दुखित रहते हैं और भाग्य, ईश्वर, समाज और सरकार पर दोषारोपण करते रहते हैं।

शान्तिप्राप्ति हेतु श्रीरामभक्त गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज अपनी पुस्तिका 'वैराग्य-संदीपनी' के मंगलाचरण में दुख का कारण और निवारण, शान्ति में बाधा और शान्ति-प्राप्ति दोनों का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं –

तुलसी यह तनु तवा है, तपत सदा त्रैताप।
सांति होई जब सांतिपद, पावै राम प्रताप ।।५।।

गोस्वामीजी कहते हैं कि यह शरीर तवा के समान है। यह सर्वदा आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक रूपी त्रितापों से जलता रहता है। इस तपन से इसे तभी शान्ति मिलेगी, जब इसे भगवान श्रीराम के प्रताप से शान्तिस्वरूप भगवान के परम पद, शान्तिपद की प्राप्ति होगी।

भगवान के परम शान्ति पद की प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा है अहंकार। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं –

अहंकार की अगिनि में, दहत सकल संसार।
तुलसी बाँचै संतजन, केवल सांति आधार ।।५३।

अंहकार की ज्वाला में समस्त संसार दग्ध हो रहा है। इतना ही नहीं –

जरै बरै अरु खीझि खिझावै। राग द्वेष महँ जनम गँवावै ।।
सपनेहुँ सांति नहीं उन देही।तुलसी जहाँ जहां व्रत एही ।।

अहंकारी लोग सदा कामनाग्नि में जलते रहते हैं। स्वयं क्रोधित होकर दूसरों को भी क्रोधित करते हैं। राग-द्वेष में ही अपना जन्म गँवा देते हैं। ऐसे स्वभाव के लोगों को स्वप्न में भी शान्ति नहीं मिलती है। अब प्रश्न उठता है कि इस अशान्ति को दूर करने का, इस ज्वाला से शीतलता प्राप्ति का क्या मार्ग है?

श्रीरामभक्ति की सुरसरि में नित्य अवगाहक गोस्वामीजी मानव जीवन की सम्पूर्ण अशान्ति को दूर करने का उपाय बताते हैं –

राग-द्वेष की अगिनी बुझानी। काम-क्रोध बासना नसानी ।।
तुलसी जबहि सांति गृह आई। तब उरहीं उर फिरी दोहाई ।।
फिरी दोहाई राम की गे कामादिक भाजि।
तुलसी ज्यों रबि कें उदय, तुरत जात तम लाजि ।।

राम के प्रताप से राग-द्वेषकामाग्नि के बुझने से काम-क्रोध की वासना नष्ट हो जाती है, तभी हृदय में शान्ति होती है। जीवन में शान्ति के अभिलाषी को ईश्वर के शान्तिपद की शरण लेनी चाहिए, तभी शान्ति की प्राप्ति होगी। ❍❍❍

विवेक वाणी

कर्म और उसका रहस्य

स्वामी विवेकानन्द

अपने जीवन में मैंने जो श्रेष्ठतम पाठ पढ़े हैं, उनमें एक यह है कि किसी भी कार्य के साधनों के विषय में उतना ही सावधान रहना चाहिए, जितना कि उसके साध्य के विषय में। जिनसे मैंने यह बात सीखी, वे एक महापुरुष थे। यह महान सत्य स्वयं उनके जीवन में प्रत्यक्ष रूप में परिणत हुआ था। इस एक सत्य से मैं सर्वदा बड़े-बड़े पाठ सीखता आया हूँ। और मेरा यह मत है कि सब प्रकार की सफलताओं की कुंजी इसी तत्त्व में है – साधनों की ओर भी उतना ही ध्यान देना आवश्यक है, जितना साध्य की ओर।

हमारे जीवन में एक बड़ा दोष यह है कि हम आदर्श से ही इतना अधिक आकृष्ट रहते हैं, लक्ष्य हमारे लिए इतना अधिक आकर्षक होता है, ऐसा मोहक होता है और हमारे मानस क्षितिज पर इतना विशाल बन जाता है कि बारीकियाँ हमारी दृष्टि से ओझल हो जाती हैं।

लेकिन अभी असफलता मिलने पर हम यदि बारीकी से उसकी छानबीन करें, तो निन्यानबे प्रतिशत यही पायेंगे कि उसका कारण था हमारा साधनों की ओर ध्यान न देना। हमें आवश्यकता है अपने साधनों को पुष्ट करने की और उन्हें पूर्ण बनाने की। यदि हमारे साधन बिल्कुल ठीक हैं, तो साध्य की प्राप्ति होगी ही। हम यह भूल जाते हैं कि कारण ही कार्य का जन्मदाता है, कार्य स्वत: उत्पन्न नहीं हो सकता, और जब तक कारण अभीष्ट, समुचित और सशक्त न हों, कार्य की उत्पत्ति नहीं होगी। एक बार हमने ध्येय निश्चित कर लिया और उसके साधन पक्के कर लिये कि फिर हम ध्येय को लगभग छोड़ सकते हैं, क्योंकि हम विश्वस्त हैं कि यदि साधन पूर्ण हैं, तो साध्य तो प्राप्त ही होगा। जब कारण विद्यमान है, तो कार्य की उत्पत्ति होगी ही। उसके बारे में विशेष चिन्ता की कोई आवश्यकता नहीं। यदि कारण के विषय में हम सावधान रहें, तो कार्य स्वयं सम्पन्न हो जाएगा। कार्य है ध्येय की सिद्धि; और कारण है साधन। इसलिए साधन की ओर ध्यान देते रहना जीवन का एक बड़ा रहस्य है। गीता में भी हमने यही पढ़ा और सीखा है कि हमें लगातार भरसक कार्य करते ही जाना चाहिए; काम चाहे जैसा भी हो, अपना पूरा मन उस ओर लगा देना चाहिए, पर साथ ही ध्यान रहे, हम उसमें आसक्त न हो जायँ। अर्थात् कार्य से किसी भी विषय द्वारा हमारा ध्यान न हटे; फिर भी हममें यह शक्ति हो कि हम इच्छानुसार कार्य को छोड़ सकें।

यदि हम अपने जीवन का विश्लेषण करें तो हम देखेंगे कि दुख का सबसे बड़ा हेतु यह है : हम कोई बात हाथ में लेते हैं और अपनी पूरी ताकत उसमें लगा देते हैं; कभी कभी असफलता होती है, पर फिर भी हम उसका त्याग नहीं कर सकते। यह आसक्ति ही हमारे दुख का सबसे बड़ा कारण है। हम जानते हैं कि वह हमें हानि पहुँचा रही है और उसमें चिपके रहने से केवल दुख ही हाथ आएगा, परन्तु फिर भी हम उससे अपना छुटकारा नहीं कर सकते। मधुमक्खी तो शहद चाटने आयी थी, पर उसके पैर चिपक गये उस मधुचषक से और वह छुटकारा नहीं पा सकी। बार-बार हम अपनी यही स्थिति अनुभव करते हैं। यही हमारे अस्तित्व का सम्पूर्ण रहस्य है। हम यहाँ आये थे मधु पीने, पर हम देखते हैं हमारे हाथ-पाँव उसमें फँस गये हैं। आये थे पकड़ने के लिये, पर स्वयं ही पकड़े गये ! आये थे उपभोग के लिये, पर खुद ही उपभोग्य बन बैठे ! आये थे शासन करने, पर हम पर ही शासन होने लगा। आये थे कुछ काम करने, पर देखते हैं कि हमसे ही काम लिया जा रहा है ! हर घड़ी यही अनुभव होता है। हमारे जीवन की छोटी-छोटी बातों का भी यही हाल है। दूसरों के मन हम पर शासन चला रहे हैं और हम सदा यही प्रयत्न कर रहे हैं कि हमारा शासन दूसरों के मनों पर चले। हम जीवन के आनन्द का उपभोग करना चाहते हैं, पर वे भोग हमारे प्राणों का ही भक्षण कर जाते हैं। हम प्रकृति से सब कुछ प्राप्त कर लेना चाहते हैं, पर अन्तत: हम यही देखते हैं कि प्रकृति ने हमारा सर्वस्व हरण कर लिया है, उसने हमें पूरी तौर से चूसकर अलग फेंक दिया है।

यदि ऐसा न होता, तो जीवन में सब हरा-भरा ही होता। पर चिन्ता नहीं। यद्यपि सफलताएँ मिलती है और असफलताएँ भी, यद्यपि यहाँ आनन्द है और दु:ख भी, तो भी यह जीवन निरन्तर हरा-भरा रह सकता है, यदि केवल हम बन्धन में न पड़ जायँ।

दुख का एकमेव कारण यह है कि हम आसक्त हैं, हम बँधते जा रहे हैं। इसीलिए गीता में कहा है: निरन्तर काम करते रहो, पर आसक्त मत होओ; बन्धन में मत पड़ो। प्रत्येक वस्तु से अपने आपको स्वतंत्र बना लेने की शक्ति

(शेष भाग पृष्ठ ६५ पर)

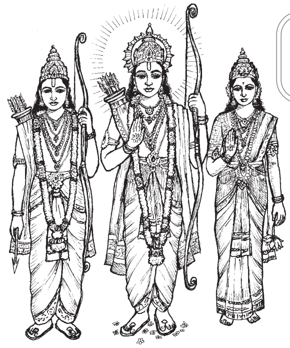

धर्म-जीवन का रहस्य (८/४)

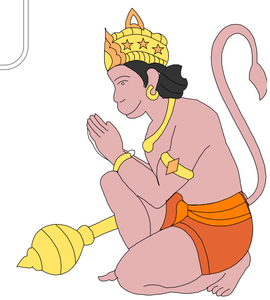

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(१९९१ ई. में विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्त्वावधान में पण्डितजी के 'धर्म' विषयक प्रवचन को 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी और सम्पादन 'विवेक-ज्योति' के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

उन्होंने कहा –

सब घट मेरा साईं रमता,
कटुक बचन मत बोल रे, तोहे पीय मिलेंगे ।।

कभी किसी ने उनसे पूछ दिया – ईश्वर हमें क्यों नहीं मिलता? वे बोले – मेरा ईश्वर सर्वत्र ही विद्यमान है, परन्तु यदि तुम स्वयं पर आवरण डाल चुके हो और यह दावा करो कि सामने कोई वस्तु ही नहीं है, तब तो यह सही नहीं है। हमें अपने सामने का आवरण दूर करना होगा।

घूँघट का पट खोल रे, तोहे पीय मिलेंगे ।।

यह जो खण्ड-खण्ड विविधता दिखाई दे रही है, उसमें मानो एक अखण्ड, अभिन्न सत्ता निहित है और तात्त्विक दृष्टि से समस्त संसार के जीव ईश्वर के अंश हैं, या फिर यह मान लें कि ईश्वर ही सबके प्राणों में विद्यमान हैं –

उमा जे राम चरन रत
बिगत काम मद क्रोध ।
निज प्रभुमय देखहिं जगत
केहि सन करहिं बिरोध ।। ७/११२ (ख)

आपके संस्कार के अनुसार जैसा भी मान सकना आपके लिये सम्भव हो और जो मान्यता भी हमारे हृदय में सद्भाव की सृष्टि करे, उसी को मान लीजिये। कसौटी तो बस, वही रहेगी। फिर उसी मान्यता को हम अपने जीवन में और समाज के जीवन में प्रस्तुत करने की चेष्टा करें।

परशुरामजी और श्रीराम के इस संवाद को आप व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखिये। इसे ब्राह्मण-क्षत्रिय के परिप्रेक्ष्य में देखना पूर्णत: अनुचित है। जो एक प्रश्न उठा था, उसमें कई प्रश्न जुड़े हुए हैं, पर सारे प्रश्नों का मूल उत्तर एक ही है और वह यह है कि परशुरामजी और श्रीराम – दोनों ही राम है। यहाँ देखिये, कैसे शब्दों के द्वारा कुछ बताने की चेष्टा की गई है। हमारे पुराणों में तीन राम प्रसिद्ध हैं। एक तो भगवान कृष्ण के बड़े भाई बलरामजी, वे भी राम हैं। ये परशुरामजी भी राम हैं और श्रीराम भी राम हैं। बाकी जो दोनों राम हैं, उनके साथ एक-एक शब्द जुड़ा हुआ है।

भगवान कृष्ण के भ्राता जो राम हैं, वे महान बलशाली तथा पुरुषार्थ से सम्पन्न हैं। फिर वे तो शेष के अवतार हैं, परन्तु वहाँ एक शब्द जुड़ा हुआ है, उन्हें राम नहीं 'बलराम' कहते हैं। यहाँ ये जो दूसरे राम हैं, उनके साथ भी कुछ जुड़ा हुआ है, वे हैं 'परशुराम'। अब ये जो तीसरे राम हैं, इनके साथ भी एक शब्द जुड़ना चाहिए था। यदि परशुराम फरसा लेकर चलते थे, यदि बलरामजी हल-मूसल लेकर चलते थे, तो भगवान राम भी तो धनुष-बाण लिए ही रहते थे। यदि इनका भी नाम 'धनुषराम' रख दिया जाता, तो कैसा रहता? परिचय देने की दृष्टि से अच्छा ही रहता कि ये तीनों राम हैं, परन्तु एक धनुषराम हैं, एक परशुराम हैं और एक बलराम हैं। यहाँ पर एक बात याद रखने की है और वह यह कि परशु और बल से जुड़कर राम बड़ा नहीं होता, उपाधि से राम बड़ा नहीं होता। उपाधि लगाकर उसके माध्यम से बड़ा होने का अनुभव तो वह करता है, जो अपने को सचमुच छोटा मानता है। कई लोग व्यग्र रहते हैं कि यह उपाधि मिल जाय, तो कितना अच्छा हो। उसके मूल में वृत्ति यही रहती है कि लोग हमें बड़ा समझने लगें। तो वह अपने आपको छोटा समझता होगा, तभी तो व्यग्र है।

यहाँ एक दार्शनिक संवाद की आवश्यकता है। ईश्वर उपाधिरहित अर्थात् निरुपाधिक है या सोपाधिक? ब्रह्मतत्त्व तो मूलत: निरुपाधि है। अब राम को श्रेष्ठ बनाने के लिए यदि उसके साथ परशु को जोड़ना पड़ जाय, फरसे के बिना राम छोटे लगें और यदि बिना बल को जोड़े, हल-मूसल को जोड़े, राम छोटे लगें, तो इसका अर्थ है कि उन्हें उपाधि जोड़कर बढ़ाया गया है। परन्तु श्रीराम को कहीं से बढ़ाया थोड़े ही गया है। राम शब्द का अर्थ है – जो सर्वत्र रमण करता है, या योगी जिसमें रमण करते हैं।

इस संवाद को लीला में संवाद कह लीजिए। इसे लोगों को यह बताने के लिए प्रस्तुत किया गया कि जब जीव अपने साथ उपाधि को जोड़ लेता है, तो क्या अन्तर पड़ जाता है। आप उपाधि को जोड़िए, हम उपाधि जोड़ने से नहीं रोकते। शब्द के साथ व्यवहार में उपाधि भी जुड़ ही जाती है। परन्तु उपाधि को वास्तविक सत्य समझ लेना समस्याओं की सृष्टि कर सकता है।

इस सन्दर्भ में हमें एक संकेत मिलता है। बलरामजी अपने साथ हमेशा मूसल रखते हैं और परशुरामजी फरसा रखते हैं, परन्तु श्रीराम के चरित्र में एक विलक्षण तत्त्व मिलेगा। श्रीराम धनुष चलाते हैं, श्रीराम धनुष खींचते हैं, श्रीराम धनुष तोड़ते हैं और अन्त में श्रीराम धनुष छोड़ते हैं। जिसमें यह चारों होगा, वही पूर्ण होगा। जो कोई चीज पकड़कर बैठ जायेगा, वह अपूर्ण रह जायेगा। आप किसी वस्तु को पकड़े रहिए, फिर देखिए कितनी कठिनाई होती है? अच्छी-से-अच्छी वस्तु आपको पकड़ा दी जाय और कहा जाय कि यह छूटने न पाये, इसको पकड़े ही रहिए। यदि आपको एक लड्डू ही पकड़ा दिया जाय कि इसे आप दिन-रात पकड़े ही रहिए, तो आपकी क्या स्थिति हो जायेगी? कैसा अनुभव करेंगे आप? कोई ऐसी वस्तु, जो बड़ी अच्छी लगती हो, जैसे सोना। आप हमेशा अपने सिर पर बीस किलो सोना उठाए रहिए, तो कैसा लगेगा? अत: श्रीराम की पूर्णता इसी में है कि उनको इन चारों में कोई अन्तर नहीं लगता है। विश्वामित्रजी ने कहा – चलाओ। तो चला दिया।

चले जात मुनि दीन्हि देखाई।
सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ।। १/२०९/५

जनकजी ने कहा – तोड़कर दिखाओ, तो तोड़ दिया। परशुरामजी प्रारम्भ में तो बड़े रुष्ट हुए, परन्तु अन्त में केन्द्र तो उन्होंने भी धनुष को ही बनाया। वे बोले – मैंने सुना था कि तुम धनुष चलाने की कला में बड़े निपुण हो और यहाँ आकर पता चला कि तोड़ भी डालते हो। परन्तु मैं तीसरे प्रकार से तुम्हारी परीक्षा लूँगा। मेरे पास एक धनुष है। यदि तुम उसको खींच लो, तो मैं समझ लूँगा कि पूर्णावतार हो गया है। श्रीराम के द्वारा वह भी हो गया – धनुष अपने आप ही भगवान राम के हाथ में चला गया –

देत चापु आपुहिं चलि गयऊ ।। १/२८४/८

सब कुछ सम्पन्न हो गया। लंका-विजय करके अयोध्या लौट आए, तो पहला कार्य यही किया – धनुष-बाण गुरु वशिष्ठ के सामने रख दिया –

बामदेव बसिष्ठ मुनिनायक।
देखे प्रभु महि धरि धनु सायक ।। ७/५/२

उसके बाद उनके धनुष को उठाने का वर्णन गोस्वामीजी ने नहीं किया। अब यह प्रश्न हो सकता है कि सिंहासन पर बैठते हैं, तो धनुष-बाण लेकर बैठते हैं, या फिर बिना धनुष-बाण लिए बैठते हैं? इसका सांकेतिक अर्थ यह है कि आप चाहें तो उनके हाथ में धनुष-बाण देखकर प्रसन्न हों, अथवा चाहें तो बिना धनुष-बाण के ही सन्तुष्ट हो जायँ। वैसे उनके हाथों में धनुष-बाण अच्छा लगता है और लगना भी चाहिए, क्योंकि हमें लगता है कि धनुष-बाण रहेगा, तो संकट पड़ने पर कम-से-कम हमें बचायेंगे तो सही। वह भी ठीक है, परन्तु उनकी स्वयं की धनुष-बाण के प्रति कोई आसक्ति नहीं है। उन्होंने उठा भी लिया और उसे रख भी दिया। यही वह तत्त्व है – जो पूर्ण है, वह तो हर तरह से पूर्ण है। प्रत्येक वर्ण में पूर्ण है, प्रत्येक वर्ग में पूर्ण है। इसीलिए तो आपने देख लिया। ब्रह्म ने जन्म लिया तो क्षत्रिय वर्ण में, जो द्वितीय वर्ण था। फिर लोग गोरे रंग को कितना महत्त्व देते हैं, परन्तु यह ब्रह्म भी बना, तो साँवले रंग का। इसका अभिप्राय यही है कि उसका रंग चाहे गोरा हो या साँवला, या चाहे अन्य कोई हो, वह तो हर तरह से परिपूर्ण है –

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

महाराज जनक के दरबार में परशुरामजी की दृष्टि सबसे पहले परिपूर्ण अखण्ड श्रीराम की ओर जाती है और इसके साथ ही उन्हें सब कुछ भूल जाता है। प्रत्येक कड़ी जुड़ी हुई है। लिखा है – श्रीराम को देखकर उनकी आँखें थक गयीं। थकना शब्द के दो अर्थ हैं। परिश्रम से कोई थक जाता है, तो उसे कहते हैं थकना; और यदि कोई रुक जाय, तो उसके लिए भी यह 'थकना' शब्द है। यदि आँख की पुतलियाँ रुक गयीं, तो कह देते हैं कि आँख की पुतलियाँ थक गयीं। इसी जनकपुरी में दो व्यक्तियों की आँखें थकीं। दोनों ही महानतम व्यक्ति हैं। एक तो सीताजी की आँखें थकीं और दूसरी परशुरामजी की आँखें थकीं। इस 'थकने' शब्द का प्रयोग दोनों के लिए किया गया। पुष्प-वाटिका में श्री सीताजी ने जब भगवान को देखा –

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता।
कहँ गए नृप किसोर मनु चिन्ता ।।

जहुँ बिलोक मृगसावक नैनी ।
जनु तहँ बरसि कमल सित श्रेणी ।।
लता ओट तब सखिन्ह लखाए ।
स्यामल गौर किसोर सुहाए ।।
देखि रूप लोचन ललचाने ।
हरषे जनु निज निधि पहिचाने ।।
थके नयन रघुपति छबि देखें ।। १/२३२/१-५

यह एक बहुत बड़ा सूत्र है, जिसकी व्याख्या सारे भक्ति और दर्शनशास्त्र एकत्र होकर ही कर सकते हैं। सखियाँ श्रीसीताजी को यह मानकर लाई थीं कि वे अभी श्रीराम से अपरिचित हैं, उन्होंने अभी श्रीराम को देखा नहीं है और श्रीसीताजी ने भी व्यवहार में यही प्रदर्शित किया, मानो वे श्रीराम को जानती ही नहीं। परन्तु गोस्वामीजी ने जो सूत्र दिया, वह यह था कि श्रीसीताजी ने जब श्रीराम को देखा, तो उन्हें ऐसी प्रसन्नता हुई मानो किसी ने 'निज निधि' – अपनी वस्तु को पहचान लिया हो। यहाँ 'निधि' के साथ जो 'निज' शब्द जुड़ा हुआ है, वह ध्यान देने योग्य है। केवल खजाने को देखकर नहीं, बल्कि 'निज निधि' – अपनी वस्तु को देखकर। यह एक महानतम सूत्र है।

इसके द्वारा भक्तिदेवी जगज्जननी मानो हम बालकों को भक्ति की शिक्षा दे रही हैं। – क्या? बोले – ईश्वर का गुण -सौन्दर्य का वर्णन सुनने के लिये आप कथा श्रवण करते हैं।

श्रीसीताजी ने स्नान किया, पार्वतीजी का पूजन किया और सखी से कथा सुनी। हम लोगों को भी यही करना चाहिये। कथा सुनने के पहले सरोवर में स्नान अवश्य करिए, पार्वतीजी की पूजा अवश्य कीजिए और तब कथा सुनिए।

सरोवर में स्नान इसीलिए तो करते हैं, ताकि शरीर में कोई गन्दगी हो, तो धुल जाय। अब मन के जिस बर्तन में या बुद्धि के जिस बर्तन में आप कथा सुनते हैं, पहले उसे धो तो लीजिए। कथा को यदि आप गन्दे बर्तन में लेंगे, तो वह कथा भी गन्दी हो जायेगी। अत: पहले हम सन्तों के हृदय को देखें, ताकि उससे हमारा अन्त:करण निर्मल हो, क्योंकि सन्तों का हृदय ही निर्मल जल है –

सन्त हृदय जस निर्मल बारी ।। ३/३८/७

पहले हृदय को स्वच्छ करें, परन्तु कथा सुनने के पहले उस निर्मल अन्त:करण के साथ पहले श्रद्धारूपा पार्वतीजी की पूजा करें। पार्वतीजी की पूजा का क्या तात्पर्य है? –

भवानी-शंकरौ वन्दे
श्रद्धा-विश्वास-रूपिणौ ।। १/२

पार्वतीजी के मन्दिर में उस समय जो सखी आती है, वह मानो सन्त है, जो भगवान के रूप और गुण का वर्णन करते हैं। वर्णन सुनना अर्थात् कथा सुनना और इस कथा-श्रवण का जो फल होना चाहिए, वह है उत्कण्ठा। जिसका वर्णन सुना, जरा उसका रूप भी तो देखूँ –

सो प्रभु मैं देखब भरि नयना ।। १/२०६/८

उत्कण्ठा जागने के बाद सीताजी ने उस सखी से कहा – तुम देखकर आयी हो, आगे-आगे चलो –

चली अग्र करि प्रिय सखि सोई ।। १/२२९/८

यह आचार्य और गुरु का वर्णन है। सीताजी स्वयं उस सखी के पीछे-पीछे चलती हैं, जिसने प्रभु को देखा है। तो मार्गदर्शक ऐसा हो, जिसने स्वयं उस सत्य का साक्षात्कार किया हो। सीताजी के मन में उत्कण्ठा और व्याकुलता है। जाने पर पता चला कि जहाँ सखी ने देखा था, वहाँ राम नहीं है। यदि उनमें उस सखी के प्रति श्रद्धा न होती, तो वे कह देतीं – तुम तो झूठी हो, व्यर्थ ही यहाँ तक ले आई। तुमने कहा – यहाँ राम हैं, कहाँ हैं राम?

याद रखिए, सन्त या गुरु यदि ऐसा कुछ कहें और लगे कि हमें तो नहीं दीख रहे हैं या अनुभव नहीं हो रहा है, तो सन्त या गुरु के वचन को झूठा नहीं मान लेना चाहिए। श्रीसीताजी व्याकुल हो गयीं – कहाँ चले गये? यह व्याकुलता उत्पन्न करने के लिए ही ईश्वर मानो उस समय प्रत्यक्ष नहीं हुए। गोस्वामीजी ने कहा – अत्यन्त व्याकुल उत्कण्ठा के साथ वे चारों ओर दृष्टि डाल रही हैं। दृष्टि तो हम लोग भी चारों ओर डालते हैं, परन्तु व्यक्तियों को देखने के लिये, लेकिन उन्होंने ईश्वर को देखने के लिए चारों ओर देखा।

यदि हम दृष्टि का उपयोग बहुत अधिक करेंगे, तो थकान आयेगी ही। जब सचमुच ही श्रीराम दिखे, तो उनको लगा – अरे, ये तो मेरे अपने हैं, मेरे निजी हैं। यहाँ सूत्र क्या है? प्रारम्भ में ईश्वर अपरिचित लगता है। वैसे तो वे श्रीसीताजी से अभिन्न ही हैं, परन्तु जब आप पहली बार उनको देखेंगे तो क्या लगेगा? भगवान से पूछा गया – आपके दर्शन का फल क्या है? भगवान ने हँसकर कहा – मेरे दर्शन का तो एक ही फल है। – क्या? बोले – मैं कुछ देता नहीं। बस, उसी का अपना जो सहज स्वरूप है, मेरे दर्शन से उसी का उसे बोध हो जाता है। **(क्रमशः)**

सारगाछी की स्मृतियाँ (४०)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

कर्म करने में ही तो परीक्षा होती है। इसमें आसक्ति आती है या नहीं, इसकी परीक्षा करके देखना। दस-पन्द्रह वर्ष बाद या जितने दिन भी हो, किसी आश्रम से प्रस्थान करते समय यदि थोड़ी-सी भी आसक्ति का अनुभव न करो, तभी समझा जायेगा कि सचमुच ही साधु हो सकोगे। कार्य का बहाना बनाकर आदर्श से च्युत हो जाना साधु के लिए बहुत ही अपराध है। जो संसार छोड़कर जाना चाहता है, वह कार्य का बहाना बनाकर साधुता को छोड़कर क्यों जायेगा? संसार के किसी भी व्यक्ति के लिए संन्यासी का कोई कर्तव्य नहीं रहता है। वह संसार का कल्याण करने के लिए झूठ क्यों बोलेगा? संन्यास का आदर्श कितना महान है, इसकी धारणा करने के लिए जीवन्मुक्ति-विवेक आदि पढ़ने को इसीलिए कहता हूँ, – भगवत्प्राप्ति के नाम पर संन्यासी का वेश धारण करके भगवच्चिन्तन छोड़कर कर्म में अपने को झोंक डालना बड़ा अपराध है।

सदा-सर्वदा स्मरण रखना कि मैं किसी के भी साथ कभी खराब व्यवहार नहीं करूँगा, किसी को भी दुर्वचन कहकर कष्ट नहीं दूँगा, क्रोधी नहीं बनूँगा, उससे हमारा जो होना हो, हो जाय।

२६-८-१९६०

महाराज – रामकृष्ण-संघ के प्रति लोगों का जो इतना अवर्णनीय, आश्चर्यजनक आकर्षण है, उसका कारण क्या है? क्या इसका कारण हमारी त्याग-तपस्या है? यदि ऐसा होता, तो स्वामी ब्रह्मानन्द आदि प्रमुख स्वामीगण निश्चय ही हम लोगों से कम तपस्वी नहीं थे। किन्तु तब तो संघ इतना लोकप्रिय नहीं था। इसका कारण विशाल भवन और बड़े लोगों के साथ हमलोगों का मिलना-जुलना है।

किसी से भी कुछ पाने की आशा छोड़कर सब कुछ स्वयं ही करना पड़ता है, सहायता पाने की आशा मत रखो। शास्त्रानुकूल जीवन यापन करके मन को अन्तर्मुखी बनाने का प्रयत्न करो। संन्यास श्रेष्ठ रुचि वाले बुद्धिमान लोगों के लिए है, – मूर्खों के लिए नहीं है। हमेशा मन में विश्लेषण करना होगा, सजग रहना होगा। विवेक-विचार द्वारा स्त्रियों से दूर रहना होगा। संघ में अनेक लोग गेरुआ धारण करने के लिए आते हैं, ज्ञान, भक्ति, मुक्ति पाने के लिये नहीं। जो सच्चे हैं, जिनके भीतर कोई दुर्बुद्धि नहीं है, उनको कोई भय नहीं है। समालोचना सीखना है अपने को देखने के लिए, किसी का अपमान करने के लिए नहीं।

आसुरी-भाव तो हमलोगों के भीतर है ही। कार्य करते समय काम, क्रोध, दम्भ, अहंकार का आक्रोश फूट पड़ता है। इन सबको शास्त्रज्ञान, विवेक-विचार द्वारा दबाकर नष्ट करना पड़ता है। झूठ बोलने से उसका फल मिलेगा ही, चाहे वह किसी भी कारण से ही क्यों न हो। फिर भी उद्देश्य महान होने पर उसके प्रभाव से वह (झूठ बोलने का) पाप स्पर्श नहीं करता। किसी नितान्त अपरिहार्य अवस्था में झूठ बोलने पर भी बारम्बार ठाकुर का स्मरण करके, उनका नाम-जप करके, गंगाजल पीकर अपने को शुद्ध कर लेना चाहिये।

संन्यासी को सब ओर ध्यान रखकर सावधानी से चलना चाहिये। नहीं तो, पता नहीं किस ओर से संकट सिर पर आ जायेगा, कुछ निश्चित नहीं है। सम्भवतः मन में ऐसा विचार आ जाय कि अरे इतना तो ब्रह्मचर्य, व्रत-उपवास, जप, पूजा, सत्कर्म करता हूँ। अचानक मन में आया कि एक ओर थोड़ी-सी ढील क्यों न दे दूँ ! हाय ! वही एक ओर थोड़ी-सी ढील के कारण साधक का सर्वनाश हो गया। सम्भवतः सब ओर से यत्न करने पर भी कोई जिह्वा का, कोई मान-यश का भिखारी हो गया। fame is the last infirmity of noble mind .

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ।। (गीता, २/६७)

सेवक – क्या ठाकुर हम लोगों की रक्षा नहीं कर सकते हैं?

उत्तर – ठाकुर क्या करेंगे, यदि तुम रामकृष्णवचनामृत, गीता शास्त्र का अध्ययन न करो? जप-ध्यान न करो? ठाकुर तो प्राणपण से रक्षा करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

साधु का एक स्तर है। उस स्तर के सम्बन्ध में सजग रहकर भी अनेक संकटों से बचा जा सकता है। भागवत की टीका में एक कथा है। एक राजा अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं। सभा में एक ऋषि उपस्थित हैं। उन्होंने राजा से पूछा – इस यज्ञ का उद्देश्य क्या है? राजा ने उत्तर दिया – अक्षय स्वर्ग का भोग, अप्सरा और अमृतपान। ऋषि ने कहा – जब शूकर और शूकरी संभोग करते हैं, तो क्या आपका और अप्सरा के संभोग से उत्पन्न आनन्द में कोई अन्तर है? जिस अमृतपान की बात आपने कही, तो क्या शूकर के मुख में विष्ठा के स्वाद की तुलना में अमृत का आस्वादन कुछ नया है?

टीकाकार की कैसी दृष्टि है ! बाप रे ! शूकर का जीवन और देवताओं का जीवन एक ही दृष्टि से देखा गया है। उपाय है – इन दोनों ही जीवनों से परे चले जाना, सब कुछ छोड़ आँखें बन्दकर हरिनाम लेते हुए सचिदानन्द में विभोर हो जाना।

सेवक – मैं पहले जब भी आपके पास जाता था, तो आप तुरन्त कहते थे – मैं देह नहीं हूँ, मन नहीं हूँ, बुद्धि नहीं हूँ।

महाराज – ऐसा नहीं कहने से उपाय क्या है ! संन्यासी होने आया हूँ और इसे नहीं जानने से संन्यासी नहीं हुआ जा सकता। हमारे साधुओं से बात करके देखो न, तीन-दिन में ही पता चल जायेगा। सबका ही 'मैं' अहंकार उबल रहा है। संन्यासी को यह संसार छोड़कर चले जाना है, उसे इस देह-मन-बुद्धि के भीतर रखने से संसार कैसे छूटेगा ! संसार को तो इस देह-मन-बुद्धि के द्वारा ही देख रहो हो।

जो मुमुक्षु हैं, केवल वे ही संन्यास के उपयुक्त हैं। वे ही श्रीरामकृष्ण के भाव को ठीक-ठीक समझ सकते हैं। इनके अतिरिक्त अनेक लोग कुछ पाने की आशा से आते हैं। बहुत बुद्धिमान और मुमुक्षु न होने पर श्रीरामकृष्ण देव को नहीं समझ सकोगे। श्रीरामकृष्ण देव को साधारणतया लोग एक सरल व्यक्ति समझते हैं। रामकृष्ण एक भाव है। वेद, पुराण, उपनिषद, गीता, ब्रह्मसूत्र आदि जितने भी धर्म आज तक पृथ्वी पर प्रकट हुए हैं, इन सबका सर्वाधिक उत्कृष्ट सारतत्व (most refined quintessence) श्रीरामकृष्णवचनामृत है। श्रीरामकृष्ण एक व्यक्ति नहीं हैं, फिर भी इस रूप की इतनी पूजा-उपासना क्यों होती है? हाँ, इसी रूप के माध्यम से ही हमलोग सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार, ज्ञान-कर्म-भक्ति-योग, सब कुछ का (demonstration) प्राकट्य देखते हैं, इसीलिए इस रूप का इतना सम्मान है।

सेवक – महाराज, ठाकुर के शिष्यों में किसके शरीर का कैसा रंग था, यह जानने का कौतूहल हो रहा है।

महाराज – मैंने तो सबको देखा नहीं, इसके अलावा जब मैंने देखा था, तब वे लोग प्रौढ़ थे। फिर भी, जो सुना है, वह बता रहा हूँ। स्वामीजी, ब्रह्मानन्द महाराज, प्रेमानन्द महाराज, खोका महाराज, शिवानन्द महाराज, हरि महाराज एकदम गोरे रंग के थे। शरत महाराज, अभेदानन्द महाराज, लाटू महाराज, अखण्डानन्द महाराज, विज्ञानानन्द महाराज, ये लोग श्याम (साँवले) वर्ण के थे।

सेवक – निर्वेदानन्द स्वामी की पुस्तक में ज्ञान-साधना की बातें प्रचुर मात्रा में हैं।

महाराज – ये साधारण लोगों के लिए लिखी गई हैं, संन्यासी के लिए नहीं। श्रीरामकृष्णवचनामृत में भी तो ज्ञान की निन्दा है, कहा गया है कि कलियुग में नारदीय भक्ति (श्रेष्ठ) है। किन्तु ठाकुर और स्वामीजी कुछ कहने के पहले आसपास कोई गृहस्थ हैं कि नहीं, यह देखकर बोलते थे।

हमलोगों में कोई विचार नहीं करना चाहता। एक मोटे शक्तिशाली भगवान हैं, जो आकाश में रहते हैं। हमारे समान ही उनकी भी रुचि-अरुचि है। अधिकांश लोगों से पूछकर ही देखो न कि वे भगवान कहने से क्या समझते हैं ! भगवान क्या हैं, इसकी कोई धारणा ही नहीं है। हमलोगों में सभी लोग सदा बात-बात में लिखते और कहते हैं – प्रभु की इच्छा, माँ की इच्छा ! अरे भगवान की इच्छा क्या है? वह सब कपट है, भ्रम है। एक व्यक्ति ने उत्तर दिया था – 'माँ की इच्छा' (बंगला में, *मार इच्छा*) ठीक ही है, किन्तु उसमें 'आ' छूट गया है, वह होगा *'आमार'* यानि 'मेरी इच्छा'। ❍❍❍

स्वामी ब्रह्मानन्द के संस्मरण

स्वामी परमेश्वरानन्द

(‘राखाल महाराज’, ‘राजा महाराज’ या केवल ‘महाराज’ के नाम से भी परिचित भगवान श्रीरामकृष्ण के एक प्रधान शिष्य तथा रामकृष्ण मठ-मिशन के प्रथम संघाध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्दजी आध्यात्मिक भावों के एक अपूर्व ज्योतिपुंज थे। उनके ये संस्मरण बँगला मासिक उद्‌बोधन के वर्ष ९३ के अंक ११ में और तदुपरान्त ‘स्वामी ब्रह्मानन्देर स्मृतिकथा’ नामक ग्रन्थ में प्रकाशित हुए थे। वहीं से स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने उसका विवेक-ज्योति के लिए हिन्दी अनुवाद किया है। – सं.)

करीब ६५ वर्ष पूर्व मैंने स्थायी रूप से घर छोड़कर जयरामबाटी तथा कोआलपाड़ा में रहना आरम्भ किया। आवश्यकता के अनुसार दोनों ही स्थान का कार्य करता था। उन्हीं दिनों कार्य के सिलसिले में बीच-बीच में कलकत्ते तथा बेलूड़ मठ जाता था। इन स्थानों में और कभी-कभी जयरामबाटी में रहते समय स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी शिवानन्द, स्वामी सारदानन्द, स्वामी प्रेमानन्द आदि ठाकुर के अन्तरंग लीला-सहचरों से भी मिलने तथा बातचीत करने का सुयोग मिल जाता। परन्तु उन सब बातों का महत्त्व मैं उन दिनों नहीं समझ सका था। इसीलिये उन सब बातों को लिखकर भी नहीं रखा। इतना समय बीत जाने के बाद इस वृद्धावस्था में उनकी कितनी ही बातें विस्मृत हो चुकी हैं।

एक बार कुछ दिन विश्राम तथा महाराज का पुनीत सान्निध्य पाने की आशा के साथ मैं भुवनेश्वर के मठ में गया। महाराज उन दिनों भुवनेश्वर के मठ में ही थे। मठ-भवन की पहली मंजिल का निर्माण-कार्य पूरा हो चुका था। दुमंजले पर मन्दिर आदि का निर्माण चल रहा था। महाराज के निर्देशानुसार स्वामी शंकरानन्द निर्माण-कार्य की देखरेख कर रहे थे। महाराज को भजन खूब पसन्द थे। संध्या के बाद या फुरसत के समय मठ में गाना-बजाना हुआ करता था। इसी के बीच बातचीत के दौरान महाराज विभिन्न विषयों पर उपदेश दिया करते थे। एक दिन जयरामबाटी आश्रम की जमीन को लेकर चल रहे झंझट के प्रसंग में उन्होंने कहा, ‘‘कोई घटना होने पर तत्काल कोई – action न लेकर, उसकी क्या और किधर गति हो सकती है, इसे देखकर कार्य करना चाहिये। Wait and see.’’

जिस समय की बात लिख रहा हूँ, उन दिनों वहाँ बाजार आदि की असुविधा थी। चीजें भी अधिक नहीं मिलती थीं। कलकत्ते के एक भक्त (विपिन बाबू या विनोद बाबू – नाम ठीक याद नहीं है) सप्ताह में दो दिन एक टोकरी फल तथा एक टोकरी सब्जियाँ भेजा करते थे। एक दिन बातचीत के दौरान महाराज ने कहा था, ‘‘(बेलूड़) मठ में उतनी भूख नहीं लगती, परन्तु वहाँ खाने की कितनी ही चीजें हैं ! और यहाँ खूब भूख लगती है, परन्तु उपयुक्त खाद्य-पदार्थ नहीं मिलते।’’ वे वहाँ गौरीकुण्ड का जल पीते थे। शाम को बहुधा आश्रम के अन्दर ही टहलते थे। महाराज को देखकर मुझे लगता मानो वे अन्यमनस्क होकर रहते हैं। मानो सर्वदा भाव में रहते थे।

उस बार मुझे लगभग एक माह उनके पूत सान्निध्य का सौभाग्य मिला था। लगातार इतने दिन उनके साथ रहने का सुयोग मुझे अन्य कभी नहीं मिला था।

१९१६ ई. में ठाकुर की तिथिपूजा के थोड़ा पूर्व श्रीमाँ ने तीन जन को गेरुआ वस्त्र देकर कहा कि वे बेलूड़ मठ में महाराज के पास जाकर विरजा होम कराकर संन्यास-नाम ले लें। उस समय मैंने भी उनसे गेरुआ के लिये प्रार्थना की थी। परन्तु श्रीमाँ ने उस समय मुझे नहीं दिया। कुछ दिन बाद अप्रैल के प्रारम्भ में माँ ने एक दिन कृपा करके अचानक ही मुझे गेरुआ वस्त्र दिया। वस्त्र देने के बाद उन्होंने ठाकुरजी से मेरे लिये प्रार्थना की। उसी समय न जाने क्यों, मेरे तन-मन में एक तरह का भयंकर भय समा गया। माँ से यह बात कहने पर वे बोलीं, ‘‘जल्दी से मठ में जाकर राखाल से विरजा होम कराकर नाम ले लेना।’’ मैंने कहा, ‘‘आपने कृपा करके संन्यास दिया है, यही पर्याप्त है। विरजा होम करके नाम लेने की क्या जरूरत?’’ माँ ने उत्तर दिया, ‘‘नहीं, नहीं, जरूरत है। तुम लोगों को बहुत-से कार्य करने होंगे।’’

संन्यास लेने के कुछ दिनों पूर्व महाराज ने कोआलपाड़ा आश्रम के लिये चन्दा एकत्र करने हेतु मेरे नाम से दो वर्षों (१९१६-१९१८ ई.) के लिये एक Letter of authority (अधिकार-पत्र) लिख दिया था। श्रीमाँ से संन्यास पाने के बाद मैं चन्दा एकत्र करने खड्‌गपुर गया। वहाँ एक दिन सहसा एक ड्रेन में गिर जाने से मुझे बड़ी चोट आयी। पीड़ा में क्रमश: वृद्धि हो जाने से चलना-फिरना बड़ा कष्टकर हो गया। मैं चन्दा जुटाने का कार्य बन्द करके बेलूड़ मठ चला आया। उस दिन शाम को महाराज पुराने

मठ-भवन के पूर्व की ओर के मैदान में गंगा की ओर मुख किये एक बेंच पर बैठकर हुक्का पी रहे थे। परन्तु उन्हें देखकर ऐसा लग रहा था कि उनका मन कहीं अन्यत्र लगा हुआ है। कृष्णलाल महाराज (स्वामी धीरानन्द) पास में ही थे। मेरे प्रणाम करने पर महाराज ने कुशल-मंगल आदि पूछा। थोड़ी देर बाद सुयोग देखकर मैंने उनसे श्रीमाँ द्वारा निर्दिष्ट विरजा होम तथा संन्यास नाम की बात कही। सुनते ही कृष्णलाल महाराज नाराज होकर बोल उठे, "अभी हाल ही में तो – ठाकुरजी की तिथिपूजा के दिन एक बार संन्यास-दीक्षा हो गयी, अब तुम्हारे अकेले के लिये दुबारा यह सब झंझट कैसे किया जा सकता है?" मैंने उत्तर दिया, "संन्यास हो या न हो, इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। श्रीमाँ ने कहा था, इसीलिये बता रहा हूँ।" महाराज अब तक चुप बैठे थे। अब मेरी ओर देखते हुए बोले, "मायेर बाड़ी जाकर शरत् महाराज से संन्यास ले लो।" मैंने कहा, "श्रीमाँ ने आपसे संन्यास लेने को कहा है। मैं संन्यास शरत् महाराज से क्यों लूँगा?" थोड़ी देर चुप रहने के बाद महाराज बोले, "सुधीर (स्वामी शुद्धानन्द) बलराम बाबू के घर में हैं। वहाँ जाकर उससे एक दिन निश्चित करने को कहो और उसे उसी दिन मठ में आ जाने को कहना। उद्बोधन में शरत् महाराज हैं, उन्हें भी यह बात सूचित करना और उस दिन मठ में आने को कहना।" महाराज के निर्देशानुसार मैं सुधीर महाराज के पास गया। उन्होंने दिन निश्चित कर दिया। इसके बाद मैं उद्बोधन में शरत् महाराज के पास गया और उन्हें सारी बातें कहीं। उन्होंने कोई आपत्ति नहीं दिखाई। संन्यास के दो-तीन दिनों पूर्व मैं शरत् महाराज के साथ मठ में गया।

निर्दिष्ट दिन महाराज, स्वामी सारदानन्द, स्वामी शुद्धानन्द आदि की उपस्थिति में पूजा, विरजा होम तथा आहुति-दान सम्पन्न होते-होते भोर हो गया। महाराज मुझसे बोले, "अब तुम जाओ और स्नान करके पानी पी लो। उसके बाद मेरे पास आओ। तुम्हारा नाम देने के लिये थोड़ा सोचना होगा। गंगास्नान के बाद पानी पीकर मैं श्री महाराज के पास गया और उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। उन्होंने हँसते हुए कहा, "तुम्हारा नाम परमेश्वरानन्द होगा। बोलो, नाम कैसा हुआ?" मैं आनन्दपूर्वक बोला, "आपने दिया है और अच्छा नहीं होगा? बहुत अच्छा हुआ है।" वहाँ से निकल कर आते ही आम्रवृक्ष के नीचे स्वामी प्रेमानन्द जी से भेंट हुई। मेरे साष्टांग करते ही वे बोले, "जा बेटा, तेरा तो उद्धार हो गया।" श्रीमाँ ने यह समाचार पाकर बड़ी खुशी जाहिर की थी। अनेक वर्षों बाद एक वरिष्ठ उड़िया ज्योतिषी ने मेरी कुण्डली देखकर बताया था कि संन्यास के समय मेरा मृत्युयोग था। तब मेरी समझ में आया कि माँ ने क्यों अचानक ही उस दिन मुझे गेरुआ वस्त्र के साथ संन्यास दिया था और क्यों जल्दी से महाराज के पास जाकर विरजा होम कराने के बाद आनुष्ठानिक संन्यास तथा योगपट्ट (संन्यास-नाम) ग्रहण करने का आदेश दिया था।

एक अन्य दिन महाराज मठ-भवन के दुमंजले पर पूर्व की ओर के बरामदे में गंगाजी की ओर मुख किये बैठे थे। मैं प्रणाम करके नीचे बैठ गया। वहाँ कुछ अन्य साधु भी बैठे हुए थे। महाराज उनके साथ बातें कर रहे थे। तभी मठ के दो-तीन साधु ऋषिकेश से लौटकर वहाँ उपस्थित हुए। महाराज ने उन्हें उपदेश देते हुए कहा, "जिन लोगों में तीव्र वैराग्य और साधन-भजन करने की खूब शक्ति नहीं है, उन लोगों के लिये वहाँ नहीं जाना ही अच्छा है। जो लोग छत्र (अन्नसत्र)के खाने की व्यवस्था करते हैं, वे ही आधी सत्ता खींच लेते हैं। फिर साधक के मन में आता रहता है कि – कब छत्र का घण्टा बजेगा, कब भण्डारा होगा और कब धोती-कम्बल बटेंगे ! उसकी अपेक्षा मठ में रहकर स्वामीजी द्वारा आरब्ध जन-हितकर कार्यों को निष्काम भाव से करना बहुत ही अच्छा है। जब जप-ध्यान करने की खूब इच्छा होगी, तब जितने दिन भी हो सके, वहाँ जाकर तपस्या करना।"

एक बार महाराज ने बातचीत के दौरान मुझसे कहा था, "कामारपुकुर में आबनूस की लकड़ी के बने हुए हुक्के के नलके मिलते हैं। क्या तू मेरे लिये एक ला सकता है?" मैं बोला, "क्यों नहीं ला सकूँगा? अगली बार आते समय ले आऊँगा।" इसके बाद जब मठ में गया, तो अपने साथ हुक्के के दो नलके लेता गया। महाराज के एक चित्र में उनके मुख से लगा हुआ हुक्के का एक नलका दीख पड़ता है – वह उन्हीं नलकों में से एक था।

एक अन्य समय महाराज ने मुझसे पूछा था, "मैं यदि जयरामबाटी जाऊँ, तो तू मुझे मुरमुरे, मिठाइयाँ और अरहर की दाल खिलायेगा न?" मैं बोला, "क्यों नहीं खिलाऊँगा, ये तो साधारण चीजें हैं !" परन्तु खेद की बात यह है कि इसके बाद स्थूल शरीर में रहते उनका जयरामबाटी जाना नहीं हो सका था। जयरामबाटी के मातृ-मन्दिर में प्रतिवर्ष उनकी शुभ जन्मतिथि पर विशेष पूजा आदि का आयोजन होता है। उस समय कुछ चीजें बड़े यत्नपूर्वक बनाकर उन्हें भोग में निवेदित की जाती हैं। ❍

स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

६८. सत्यकाम की कहानी

मैं तुम्हें छान्दोग्य उपनिषद से एक अत्यन्त प्राचीन कथा सुनाता हूँ। इससे पता चलता है कि एक बालक को किस प्रकार ज्ञान प्राप्त हुआ। यद्यपि इस कथा की शैली उतनी उत्कृष्ट नहीं है, तथापि इसमें एक तत्त्व की बात निहित है।

एक छोटे बालक ने अपनी माता से कहा, "माँ, मैं वेदों का अध्ययन करने के लिये जाना चाहता हूँ। बताओ, मेरे पिता का नाम और मेरा गोत्र क्या है?"

उसकी माँ विवाहिता नहीं थी और भारत में अविवाहित स्त्री की सन्तान को अन्त्यज या बिना किसी जाति का माना जाता है। समाज उसे अंगीकार नहीं करता और उसे वेदों का अध्ययन करने का अधिकार भी नहीं होता।

अत: बेचारी माँ बोली, "वत्स, मैंने अनेक व्यक्तियों की सेवा की है और उसी अवस्था में तुम्हारा जन्म हुआ। इसलिये मैं तुम्हारे पिता का नाम तथा तुम्हारा गोत्र नहीं जानती। मैं तो इतना ही जानती हूँ कि मेरा नाम जबाला है और तुम्हारा सत्यकाम।"

बालक एक ऋषि के पास गया और उसने उनसे प्रार्थना की कि वे उसे एक छात्र अर्थात् शिष्य के रूप में स्वीकार करें। आचार्य ने पूछा, तुम्हारे पिता का नाम और तुम्हारा गोत्र क्या है?

माँ ने उसे जो कुछ बताया था, बालक ने वे ही बातें दुहरा दीं।

सुनकर ऋषि तत्काल बोले, वत्स, एक ब्राह्मण के अतिरिक्त दूसरा कोई भी अपने विषय में ऐसा लांछनकारी सत्य नहीं बता सकता। तुम ब्राह्मण हो और मैं तुम्हें शिक्षा दूँगा। तुम सत्य से विचलित नहीं हुए। अत: वे उस बालक को अपने आश्रम में रखकर शिक्षा देने लगे।

इसके बाद प्राचीन भारत में प्रचलित शिक्षा की विचित्र पद्धतियों के कुछ दृष्टान्त मिलते हैं। आचार्य ने सत्यकाम को चार सौ दुबली-पतली तथा क्षीण गायों की देखभाल का काम सौंपते हुए कहा, "तुम इन्हें लेकर वन में चले जाओ और जब इनकी संख्या एक हजार हो जायँ, तब लौट आना।" तदनुसार वह उन गायों को लेकर वन में चला गया।

कुछ वर्ष बीतने के बाद, इस झुण्ड के एक बड़े साँड़ ने सत्यकाम से कहा, "हमारी संख्या एक हजार हो चुकी है, अब तुम हमें अपने आचार्य के पास ले चलो। मैं तुम्हें ब्रह्म के विषय में थोड़ी शिक्षा देता हूँ।"

सत्यकाम ने कहा, "कहिये, प्रभो!"

तब वृषभ ने कहा, "पूर्व दिशा ब्रह्म का एक अंश है, इसी प्रकार पश्चिम दिशा, दक्षिण दिशा और उत्तर दिशा भी उसी के अंश हैं। चारों दिशाएँ ब्रह्म के चार अंश हैं। अब अग्नि तुम्हें ब्रह्म-विषयक कुछ और शिक्षा देंगे।"

उन दिनों अग्नि एक विशिष्ट प्रतीक माना जाता था। प्रत्येक ब्रह्मचारी या शिक्षार्थी को अग्नि-चयन करके उसमें आहुतियाँ देनी पड़ती थीं। अत: अगले दिन सत्यकाम अपने गुरु के आश्रम की ओर लौट चला। संध्या के समय जब उसने आचमन आदि करने के बाद अग्नि में होम की आहुतियाँ डालीं और अग्नि की पूजा सम्पन्न करने के बाद उसके निकट बैठा हुआ था, तो उसे अग्नि से आती हुई एक वाणी सुनाई पड़ी – हे सत्यकाम!

सत्यकाम बोला, प्रभो, आज्ञा! (तुम लोगों को शायद याद हो कि बाइबिल के प्राचीन व्यवस्थान में भी इसी प्रकार की एक कथा है। सैमुएल ने भी ऐसी ही एक रहस्यमय वाणी सुनी थी।)

अग्नि ने कहा, हे सत्यकाम, मैं तुम्हें ब्रह्म के विषय में कुछ शिक्षा देने आया हूँ। यह पृथ्वी ब्रह्म का एक अंश है, अन्तरिक्ष एक अंश है, आकाश एक अंश है और समुद्र भी ब्रह्म का एक अंश है।

फिर अग्नि ने कहा, अब एक पक्षी तुम्हें कुछ शिक्षा देगा।

सत्यकाम ने अपनी यात्रा जारी रखी और अगले दिन

संध्या के समय जब वह अग्निहोत्र कर चुका था, तभी एक हंस उसके पास आया और बोला, मैं तुम्हें ब्रह्म के विषय में कुछ शिक्षा दूँगा। हे सत्यकाम, ''जिस अग्नि की तुम उपासना करते हो, वह ब्रह्म का एक अंश है, सूर्य एक अंश है, चन्द्र एक अंश है और विद्युत् भी ब्रह्म का एक अंश है। इसके बाद वह बोला, ''अब मद्गु नामक एक पक्षी तुम्हें ब्रह्म के विषय में कुछ और शिक्षा देगा।''

अगले दिन शाम को वह पक्षी आया और सत्यकाम को उसी प्रकार की आवाज सुनाई दी, ''मैं तुम्हें ब्रह्म के सम्बन्ध में कुछ बताऊँगा। 'प्राण' (श्वास) ब्रह्म का एक अंश है, नेत्र एक अंश है, श्रवण एक अंश है और मन भी ब्रह्म का ही एक अंश है।''

इसके बाद वह बालक अपने गुरु के आश्रम में पहुँचा और उनके सम्मुख उपस्थित होकर उनके प्रति समुचित सम्मान व्यक्त किया।

आचार्य ने अपने शिष्य को देखते ही कहा, ''वत्स सत्यकाम, तुम्हारा मुख ब्रह्मज्ञानी के समान चमक रहा है! तुम्हें किसने शिक्षा दी है?''

सत्यकाम ने उत्तर दिया, ''मानवेतर प्राणियों ने।''

''परन्तु महाराज, मैं चाहता हूँ कि आप मुझे उपदेश दें। क्योंकि आप जैसे मनीषियों से मैंने सुन रखा है कि गुरु से प्राप्त ज्ञान ही परम कल्याण की प्राप्ति कराता है।''

तब ऋषि ने उसे उसी ज्ञान की शिक्षा दी, जो उसे देवताओं से प्राप्त हो चुका था। वे बोले, ''वत्स, अब तुम्हारे लिये जानने को कुछ भी शेष नहीं रहा।' (८/१९-२१)

(पृष्ठ ५६ का शेष भाग)

स्वयं से संचित रखो। वह वस्तु तुम्हें बहुत प्यारी क्यों न हो, तुम्हारा प्राण उसके लिये चाहे जितना ही लालायित क्यों न हो, उसके त्यागने में तुम्हें चाहे जितना कष्ट क्यों न उठाना पड़े, फिर भी अपनी इच्छानुसार उसके त्याग करने की अपनी शक्ति सँजोये रखो। कमजोर न तो इह जीवन के योग्य हैं, न किसी पर जीवन के। दुर्बलता से मनुष्य गुलाम बनता है। दुर्बलता से ही सब प्रकार के शारीरिक और मानसिक दुख आते हैं, और दुर्बलता ही मृत्यु है।

○○○

त्रिमूर्ति वन्दना

रामकुमार गौड़, वाराणसी

जो परमहंस नरदेव जगत में रामकृष्ण शुभ नाम धरैं,
जो पतितपावनी जगज्जननि सारदा भक्त संताप हरैं।
जो सिद्ध विवेकानन्द जगत में प्रभु का भाव प्रचार करैं,
प्रभुदेव, नरेन्द्र, सारदा माँ, मम हृदय सदैव विहार करैं।।

जो पतिताधम उद्धारक प्रभु कविवर गिरीश का पाप हरैं,
जो स्नेहमयी माँ अमजद से भी सदा पुत्रवत् स्नेह करैं।
जो ऋषिवर अलवर नरेश के मन का सब सन्देह हरैं,
प्रभुदेव, नरेन्द्र, सारदा माँ, मम हृदय सदैव विहार करैं।।

जो सत्त्व देह धर ब्राह्मण पूजक बन जीवन निर्वाह करैं,
जो शान्तिदायिनी सर्वसहा माँ अवगुण-दोष न चित्त धरैं।
नित्यसिद्ध प्रभु लीला सहचर, जो विवेक सुख में विचरैं,
प्रभुदेव, नरेन्द्र, सारदा माँ, मम हृदय सदैव विहार करैं।।

जो परमहंस होकर निश्छल बालक समान आचार करैं,
जो ममतामयी सारदा सबका नित सेवा सत्कार करैं।
जो वीर विवेकानन्द सभी में अभय शान्ति संचार करैं,
प्रभुदेव, नरेन्द्र, सारदा माँ, मम हृदय सदैव विहार करैं।।

जो निरभिमान रहकर ईश्वर के दिव्यानन्द विहार करैं,
जो प्रभु–लीला सहचरी मातु परसेवा पर-उपकार करैं।
जो रामकृष्ण-भाव-संवाहक सेवाधर्म प्रचार करैं,
प्रभुदेव, नरेन्द्र, सारदा माँ, मम हृदय सदैव विहार करैं।।

जो सदानन्दमय प्रभु मीनवत ईश्वरसिन्धु विहार करैं,
जो परसेवा तत्परा मातु निःस्वार्थ प्रेम आचार करैं।
जो ध्यानपरायण संन्यासी, ऋषि सब बन्धन परिहार करैं,
प्रभुदेव, नरेन्द्र, सारदा माँ, मम हृदय सदैव विहार करैं।।

जो बारम्बार समाधिमग्न हो, दिव्य रसामृत पान करैं,
जो लज्जापट आवृत रह छिपकर साधना महान करैं।
जो बाहर से ज्ञानी रह अन्तर में हरिभक्ति उदार धरैं,
प्रभुदेव, नरेन्द्र, सारदा माँ, मम हृदय सदैव विहार करैं।।

ईश्वरीय मातृत्व की प्रतीक – माँ सारदा देवी

स्वामी श्रीकरानन्द

(स्वामी श्रीकरानन्द जी महाराज, रामकृष्ण मठ-मिशन के न्यासी और सहायक-सचिव थे। रामकृष्ण मिशन इन्स्टिट्युट ऑफ कल्चर, कोलकाता से प्रकाशित अंग्रेजी मासिक में उनके अँग्रेजी निबन्ध Sarada Devi - An Emblem of the Motherhood of God का हिन्दी अनुवाद भिलाई के एस. बी. जाधव ने किया है। – सं.)

(गतांक से आगे)

हमें कई बार ऐसा लगता है कि माधुर्य-भाव हमें अद्वैत अवस्था तक पहुँचा सकता है। परन्तु उस भाव का क्या होगा, जिसमें हम ईश्वर को मातृवत् प्रेम करते हैं। क्या यह भाव हमें अद्वैत की अनुभूति करा सकता है?

एक दिन वेदान्त के एक महान पंडित श्रीरामकृष्ण देव के पास आये। श्रीरामकृष्ण देव ने उनका हार्दिक स्वागत करते हुए कहा – "आइये, अब हम वेदान्त के बारे में आपसे सुनेंगे।" तब उन विद्वान ने करीब एक घण्टे तक वेदान्त के द्वैतभाव, विशिष्टाद्वैतवाद और अद्वैतभाव की व्याख्या की। श्रीरामकृष्णदेव बहुत प्रसन्न हुए और उनकी बड़ी प्रशंसा की। परन्तु उसके बाद उन्होंने कहा – "जहाँ तक मेरी बात है, मैं इतना सब नहीं पसन्द करता। मेरी माँ और मेरे सिवाय दूसरा कुछ भी नहीं है। आपके लिए ज्ञान, ज्ञाता एवं ज्ञेय, ध्यान, ध्याता और ध्येय इस प्रकार के विभाग बहुत अच्छे हैं। परन्तु मेरे लिये तो 'माँ और मैं' यही सब कुछ है, अन्य कुछ भी नहीं है।"

वास्तव में यदि हम गम्भीरता से विचार करें, तो हम इसके सम्पूर्ण वेदांतिक अनुभव को प्राप्त करते हैं। जब नन्हा बालक युवक होकर अपनी माँ के पास आता है, तब वह कहाँ बैठेगा? वह एक कुर्सी लेगा और अपनी माँ के निकट बैठकर माँ से वार्तालाप करेगा, पूछेगा – "माँ, तुम कैसी हो?" ऐसे ही जब हमारे अंदर अहंकार होता है या दृढ़ जीवभाव हो जाता है, तब हम अपने को भगवान से पृथक अनुभव करते हैं। यही द्वैत की अवस्था है। लेकिन अब थोड़ी कल्पना करें, जब एक नन्हा-सा बालक अपनी माँ के पास जाता है, तब वह कहाँ बैठेगा? क्या वह कुर्सी लेगा और अपनी माँ से दूर या अलग बैठेगा? नहीं, वह दौड़कर आयेगा और बिना किसी हिचकिचाहट के माँ की गोद में समा जायेगा।

उसी तरह, जब हमारा जीवभाव, हमारा अंहकार कम हो जाता है, या समाप्त हो जाता है, तब हम भगवान की निकटता का अनुभव करते हैं। हम थोड़ा पहले की कल्पना करें। जन्म से पहले जब तक बालक माँ के गर्भ में होता है, तब उसका एक पृथक अस्तित्व होता है, परन्तु अपनी माँ से मिलकर एकाकार रहता है। इसे विशिष्टाद्वैत कहते हैं, जब साधक अनुभव करता है कि भगवान पूर्ण है और वह भगवान का अंश है। थोड़ा और आगे की कल्पना कीजिए। इस प्रकृति में, जगत में, माता के गर्भ में आने से पहले वह कहाँ था? वह विराट-पुरुष में था, ब्रह्म में था, वह अद्वैत अवस्था है। अत: 'मैं और माँ', इस भाव में, सम्पूर्ण वेदान्त की अनुभूति है।

अब हम पुन: उसी प्रश्न पर विचार करें, "यदि मैं भगवान की माँ के रूप में आराधना करूँ, तो क्या भगवान उसे स्वीकार करेंगे?" इसका उत्तर हमें भगवान श्रीरामकृष्ण देव और माँ सारदा देवी की लीलाओं में मिलता है। श्रीरामकृष्ण देव ने दिखाया कि कैसे भगवान की मातृभाव से भक्ति करें और श्रीमाँ सारदा देवी ने सबको अपनी सन्तान के रूप में स्वीकार कर ईश्वर को माँ के रूप में दिखाया। श्रीरामकृष्ण देव ने स्वयं अपनी सहधर्मिणी श्रीमाँ सारदा देवी की षोडषी पूजा की है, जिसमें उन्होंने श्रीमाँ का आदिशक्ति के रूप में आह्वान किया। उनकी जगदम्बा के रूप में पूजा की थी। यह श्रीमाँ के दिव्य मातृत्व को प्रदर्शित करता है। क्योंकि साधारणतया पति-पत्नी का सम्बन्ध पत्नी में केवल जैविक मातृत्व की उत्पत्ति करता है। किन्तु श्रीरामकृष्ण देव ने सारदा देवी के साथ अपने अनुपम सम्बन्ध से सम्पूर्ण जगत को दर्शाया कि दिव्य मातृत्व क्या है और इस मातृत्व को कैसे सम्पूर्ण रूप से अभिव्यक्त किया जा सकता है।

दूसरे भावों में या दूसरे रूपों में पहले किसी भी साधक को अपने आप को साधना करके पवित्र होना पड़ता है, उसके बाद उसे भगवान की उन-उन भावों में आराधना करने का यत्न करना पड़ता है, चाहे वह सखाभाव हो,

दास्यभाव हो या कोई अन्य भाव हो। यदि कोई सेवक अपने स्वामी के पास मलिन होकर जाता है, तो स्वामी उसे स्वीकार नहीं करेगें। मान लीजिये, यदि आपको किसी मित्र के पास जाना हो, तो आपको स्वच्छ, शुद्ध होकर ही अपने मित्र के पास जाना चाहिए। इसका अर्थ है कि ये सभी भाव भगवान के मंदिर के समान हैं। यदि आप मंदिर के गर्भगृह में प्रवेश करना चाहते हैं, तो आपको पहले स्नान करना पड़ेगा, फिर स्वच्छ, धुला कपड़ा पहनना पड़ेगा, तभी आप मंदिर में प्रवेश कर सकेंगे। परन्तु यदि आपको गंगा के जल में डुबकी लगाने घुसना हो, तो क्या आप गंगा में प्रवेश करने के पहले स्वयं को स्वच्छ, शुद्ध करते हैं? नहीं, आप जैसे हैं, वैसे ही गंगाजी में प्रवेश करते हैं और गंगाजी आपको पवित्र कर देती हैं। 'मातृभाव' वैसा ही होता है, आप माँ के पास इसी बालक-भाव से जाते हैं और माँ आपको स्वयं पवित्र कर देती हैं। हम ऐसी अनेकों घटनाएँ श्रीमाँ के जीवन में पाते हैं।

एक बार एक महिला उद्‌बोधन में गई। वह अपने जीवन में पतित हो चुकी थी। अत: इसका उसे भारी पश्चाताप हुआ। वह माँ के दरवाजे के चौखट पर ही खड़ी होकर रो रही थी। माँ ने बड़े प्रेम से कहा, ''आओ, मेरी बेटी ! अन्दर आओ'' परन्तु वह महिला आँसू बहाकर विलाप करते हुए बोली, 'माँ मैं पतित हो चुकी हूँ, तुम्हारे पास अन्दर आ नहीं सकती।'' तब माँ स्वयं बाहर आकर उसे अन्दर ले गईं।

इसी तरह की एक घटना मैंने सुनी है। एक कॉलेज का विद्यार्थी था, जो श्रीमाँ से मिलने कभी-कभी उद्‌बोधन में आता था। परन्तु युवावस्था के कारण कभी-कभी तीव्र वाासनात्मक विचारों से उसका मन विकृत हो जाता था। अत: एक दिन उन्होंने भाग जाने का निश्चय किया। वह श्रीमाँ को अंतिम प्रणाम करके हमेशा के लिए यहाँ से कहीं दूर जाने के लिए निकला। परन्तु श्रीमाँ शीघ्र ही उसके पास दौड़कर आईं और उसे वापस खींचकर बोलीं, तुम इतने चिन्तित क्यों हो? मैं तुम्हारे पास हूँ, मेरी ओर देखो।'' बाद में वह युवक एक पूज्य संन्यासी बना।

दूसरे भावों में हम देखते हैं कि साधक ऐसा सोचता या अनुभव करता है कि उसे घर-परिवार का त्याग कर निर्जन में तप करने चले जाना चाहिए। जब साधक अपने बाह्य व्यावहारिक जीवन और आन्तरिक मनोदशा में असामंजस्य देखता है, तब साधक को लगता है कि किसी शान्त निर्जन स्थल में तप-साधन करने अवश्य जाना पड़ेगा। लेकिन मातृभाव तो अत्यन्त अद्‌भुत भाव है। श्रीरामकृष्ण देव कहते थे, 'जैसे आकाश में स्थित चन्द्रमा सबके मामा हैं।' उसी प्रकार श्रीमाँ भी सम्पूर्ण परिवार की माँ हैं, जगत्जननी हैं। अत: सम्पूर्ण परिवार मिलकर भगवान की माँ के रूप में उपासना कर सकता है। जैसे श्रीरामकृष्ण देव ने दिखा दिया है किसी धर्म को मानने वाला व्यक्ति भगवान को दिव्य माँ के रूप में भक्ति करके, आराधना करके उच्च आध्यात्मिक स्थिति को प्राप्त कर सकता है। श्रीमाँ ने अपने जीवन में इसे आचरण कर हमें दिखा दिया है। हम देखते हैं कि समाज के भिन्न-भिन्न स्तर के व्यक्ति, विभिन्न संस्कृतियों की पृष्ठभूमि के व्यक्ति, गरीब-धनी, स्त्री-पुरुष, मुस्लिम और ईसाई सबको श्रीमाँ ने स्वीकार किया। जो कोई भी उनके पास 'माँ' के रूप में मिलने गया, 'माँ ने उन्हें कभी अस्वीकार नहीं किया। 'माँ' का जीवन कितना अद्‌भुत, कितना अनुपम है। एक साधारण माँ अपने बच्चे को सिखाती है कि वह कैसा आचरण करे। उसी प्रकार 'श्रीमाँ' अपने जीवन से अपने बालकों को कैसे आध्यात्मिक व्यवहार करना है, यह सिखाती हैं। ऐसे कई दृष्टान्त हैं। यहाँ एक-दो दृष्टान्त उल्लेखनीय हैं।

एक छोटी-सी बालिका थी। वह बहुत ही उपद्रवी थी। अत: स्वाभाविक था कि परिवार के सभी लोग उसके लिए चिन्तित रहते थे। परन्तु जब कभी वह श्रीमाँ के पास जाती, तो वहाँ शान्ति से बैठती थी। श्रीमाँ भी उसे स्नेह करतीं और उसे प्रसाद देती थीं। एक दिन जब माँ जयरामबाटी जाने के लिए निकलीं, तब वह नन्हीं-सी बालिका उदास हो गई। उसने श्रीमाँ से पूछा – ''माँ, क्या तुम चली जाओगी?'' माँ ने पूछा – ''मेरी नन्हीं बच्ची, क्या तुम मुझे प्रेम करती हो?'' बच्ची बोली, ''हाँ माँ, मैं तुम्हें प्रेम करती हूँ।''

माँ ने पूछा –''कितना?''

मानो किसी अबोध बालिका के समान ही, इस नन्हीं बच्ची ने भी अपने हाव-भाव से अपने छोटे-छोटे दोनों हाथों को फैलाकर निश्छलता से कहा – ''इतना माँ !''

माँ ने कहा – ''जब मैं यहाँ नहीं रहूँगी, जब मैं तुमसे दूर रहूँगी, तब भी क्या तुम मुझसे प्रेम करती रहोगी?''

नन्हीं बालिका ने कहा – ''हाँ, मैं तब भी तुम्हें प्रेम करती रहूँगी।''

माँ ने पूछा – ''मुझे कैसे मालूम होगा कि तुम मुझे प्रेम करती हो?''

नन्ही बालिका ने एक क्षण के लिए सोचा, परन्तु, वह इसका उत्तर नहीं पा सकी। तब उसने श्रीमाँ से ही पूछा – ''माँ, तुम्हें कैसे मालूम होगा कि मैं तुम्हें प्रेम करती हूँ?''

माँ ने कहा – ''यदि तुम सबसे प्रेम करोगी, तो मुझे मालूम हो जायेगा कि तुम मुझे प्रेम करती हो।''

नन्ही बालिका ने पूछा –''मैं कैसे सबसे प्रेम कर सकती हूँ ?''

माँ ने कहा – ''तुम किसी से कुछ भी मत माँगना। किसी से कुछ भी अपेक्षा मत रखना। तब तुम सबसे प्रेम कर सकोगी। क्योंकि तब तुम्हारा प्रेम तुम्हारी अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं बदलेगा।''

साधारणत: व्यावहारिक जगत में यदि कोई व्यक्ति हमें अधिक देता है, तो हम भी उसे अधिक प्रदान करते हैं, यदि कोई व्यक्ति कम देता है, तो हम भी उसे कम देते हैं। यही हम सभी का सर्वसाधारण अनुभव है। परन्तु, हम श्रीमाँ के जीवन में देखते हैं कि उन्होंने कभी भी, किसी से कुछ भी अपेक्षा नहीं कीं। इसीलिए वे सबसे एक समान, बिना किसी भेद-भाव के प्रेम करती थीं।

इसी प्रकार श्रीमाँ हमें भगवान से प्रार्थना करना सिखाती हैं। एक दिन उन्होंने अपनी भतीजी नलिनी दीदी से पूछा – ''भगवान से प्रार्थना कैसे करते हैं?'' हम सब लोग जैसा उत्तर देंगे, वैसा ही नलिनी दीदी ने भी उत्तर दिया – ''क्यों, हम भगवान से ज्ञान, भक्ति, सम्पत्ति, अच्छा स्वास्थ्य, और ऐसी ही अन्य चीजों के लिये प्रार्थना करेंगे।'' तब उनकी भूल को सुधारते हुए माँ ने कहा – ''नहीं, हमें भगवान से निर्वासना की, इच्छारहित बनने की प्रार्थना करनी चाहिए।'' वह निर्वासना की अवस्था ही तो हम चाहते हैं। यही पूर्णता की अवस्था है। आप इसे मुक्ति की अवस्था कह सकते हैं।

माँ को याद करना कितना आसान है। एक बार उनका एक संन्यासी-शिष्य तीर्थयात्रा पर गया था। वह अनेकों पुण्य तीर्थस्थलों पर गया। वहाँ से वापस आकर उसने श्रीमाँ को वहाँ का संस्मरण सुनाना आरम्भ किया – ''मैं वहाँ गया और वहाँ मैंने डुबकी लगायी। मैं उस मंदिर में गया ...'' इत्यादि। उसने लम्बा वर्णन सुनाया। उसके बाद श्रीमाँ ने उससे पूछा – ''अच्छा बेटा, जब तुम पवित्र जल में डुबकी लगा रहे थे, तब क्या तुमने मेरे लिये भी डुबकी लगायी? वहाँ देवता को पुष्प अर्पण करते समय क्या तुमने मेरे नाम से भी एक पुष्प अर्पित किया?'' तब वह संन्यासी लज्जित और अचम्भित हो गया। श्रीमाँ ने उससे कहा – ''भविष्य में यह सदैव याद रखना कि तुम्हारी एक माँ भी है।''

हृदय में माँ की उपस्थिति का अनुभव करना और वहीं माँ हमारे साथ सर्वत्र विद्यमान हैं, यही ईश्वर का मातृत्व-भाव है, इसी भाव को श्रीमाँ सारदा-देवी ने अपने जीवन में हमें दिखाया है। श्रीरामकृष्ण देव ने माँ से कहा – ''मैंने कुछ काम किया है, किन्तु तुम्हें यहाँ बहुत अधिक करना है।'' क्योंकि एक नारी के द्वारा ही ईश्वर के मातृभाव की शिक्षा अधिक प्रभावी ढंग से दी जा सकती है। श्रीरामकृष्ण देव भी कई बार भक्त के समान सदैव अनुभव करते थे, वे सबको माँ के समान प्रेम करते थे, माँ के समान सबकी देखभाल भी करते थे, वे जानते थे कि लीला की पूर्णता तभी होगी जब माँ का साकार रूप होगा।

इसीलिए श्रीमाँ ने अपने जीवन से हमें बताया कि भगवान भी बच्चों के प्रेम को स्वीकार करते हैं, जब बच्चा ईश्वर को माँ के रूप में प्रेम करता है। भगवान को माँ के रूप में प्रेम करने का अनुभव बिल्कुल स्वाभाविक है। मैं सोचता हूँ कि कुछ अत्यन्त दुर्भाग्यशाली लोगों को छोड़कर हम सबको माँ के प्रेम का अनुभव है। कोई किसी देश के, विश्व के किसी भी भाग का हो, ईश्वर की मातृ रूप में भक्ति- आराधना करने का भाव उसके लिए अधिक स्वाभाविक हो सकता है। इसीलिए श्रीरामकृष्ण देव ने कहा है –''इस युग में केवल यही सहज सटीक मार्ग है, जिसमें पतन का कोई डर नहीं है।'' यह कितना अद्‌भुत मार्ग है ! माँ परमेश्वरी सम्पूर्ण आतुरता से सर्वदा प्रतीक्षा कर रही हैं, माँ हमारी राह देखती रहती हैं कि हम कब उन्हें अपनी माँ कहकर पुकारें। अत: हम सभी श्रीमाँ को अपनी माँ कहकर पुकारें। ○○○

आध्यात्मिक जिज्ञासा (२)

स्वामी भूतेशानन्द

(ईश्वरप्राप्ति के लिये साधक साधना करते हैं, किन्तु ऐसी बहुत सी बातें हैं, जो साधक की साधना में बाधा बनकर उपस्थित होती हैं। साधक के मन में बहुत से संशयों का उद्भव होता है और वे संशय उसे लक्ष्य पथ में भ्रान्ति उत्पन्न कर अभीष्ट पथ में अग्रसर होने से रोकते हैं। इन सबका सटीक और सरल समाधान रामकृष्ण संघ के द्वादश संघाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने दिया है। उसे हम 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु प्रकाशित कर रहे हैं। – सं.)

प्रश्न – महाराज ! मन एकाग्र नहीं होता, इसका क्या उपाय है?

महाराज – ध्यान के समय निरीक्षण करने से देखा जाता है कि सदा चिन्तन-स्त्रोत, विचार-प्रवाह प्रवाहित हो रहा है। मन को विचाररहित करना कठिन है। आश्चर्य की बात यह है कि हमलोग उसी विचार-प्रवाह में डूबते जाते हैं। बहुत देर बाद जब सजग होते हैं, तब कहते हैं – 'क्या व्यर्थ की बातें सोच रहा था।' अर्थात् हम सजग नहीं थे। मन हमें जिधर ले जा रहा था, हम उधर ही जा रहे थे। मन का निरीक्षण करते रहने से धीरे-धीरे मन का स्त्रोत हमें अपनी ओर नहीं खींच सकता। मन नियन्त्रित, संयमित होता है। मन हमारे ऊपर अधिकार नहीं कर सकता। हम लोग मन पर अधिकार कर सकते हैं। मन की एक दूसरी विशेषता के बारे में भी मैं बहुत सोचता हूँ। वह यह है कि एक ही मन दो भागों में विभाजित हो जाता है। एक द्रष्टा मन और दूसरा दृश्य मन हो जाता है। द्रष्टा मन जब दृश्य मन का निरीक्षण करता है, तब मन के विचारों के साथ डूबने की सम्भावना नहीं रहती है। इसलिए स्वामीजी ने कहा है – 'आसन पर बैठते ही ध्यान आरम्भ नहीं करना। कुछ देर मन का निरीक्षण करो। मन क्या कर रहा है, इसका निरीक्षण करो। देखोगे कि धीरे-धीरे मन की चंचलता, भाग-दौड़ बन्द हो जाएगी। मन एकाग्र होगा। उसके बाद ध्यान करना होगा।'' इसीलिए कहा था, मन को विचारशून्य करना अत्यन्त कठिन है। बहुत से लोग ऐसा सोचते हैं कि विचार को बिल्कुल रोक देने से तो व्यक्ति जड़ हो जायेगा। नहीं, मनुष्य कभी भी जड़ नहीं हो सकता। विचार को रोकने या मन को वृत्तिशून्य करने से समाधि होगी। तीन अवस्थाओं में मन कार्य नहीं करता है। मूर्छा, सुषुप्ति और समाधि। सुषुप्ति में मन स्वाभाविक रूप से कार्य बन्द कर देता है और समाधि में मन साधना के द्वारा कार्य बन्द करता है।

प्रश्न – महाराज ! ध्यान और निदिध्यासन में क्या अन्तर है।

महाराज – ध्यान और निदिध्यासन एक नहीं है। विजातीय वृत्ति को दूर करने और सजातीय वृत्ति के उदय या प्रवाह को ध्यान कहते हैं। वृत्तिरहित शान्ति अवस्था को ध्यान कहते हैं। मुण्डक उपनिषद में है –

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत।।

– प्रणव धनुष है। शर आत्मा है, आत्मा का अर्थ यहाँ जीवात्मा है। 'ब्रह्म तद् लक्ष्यम् उच्यते' – ब्रह्म ही लक्ष्य है। 'अप्रमत्तेन वेद्धव्यं' – अप्रमत्त होकर उसका वेधन, भेदन करना होगा। यह 'अप्रमत्तेन' – यही ध्यान है। और 'शरवत् तन्मयो भवेत्' – उसी ब्रह्म का भेदन करके उसमें स्थित होना, वह निदिध्यासन है। वहाँ भी सावधान रहना पड़ता है। इसलिए कह रहे हैं, 'शरवत् तन्मयो'– वहाँ बिल्कुल दृढ़ भाव से अवस्थित रहना, किसी भी प्रकार से स्खलन या च्युति न हो।

प्रश्न – महाराज ! ध्यान करने के लिए कैसा स्थान अनुकूल या अच्छा है ?

महाराज – महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्द जी महाराज) ने एक स्थान पर कहा है – ''चाँदनी रात में ध्यान नहीं करना चाहिए। चन्द्रमा के प्रकाश में दूसरे प्रकार के भाव का उदय होता है। विलासिता का भाव आता है।

ध्यान के लिए उन्मुक्त मैदान, पर्वत, नदी का तट ये सब अच्छे हैं। समुद्र का तट अच्छा नहीं है। वहाँ बहुत अधिक हवा चलती है और बिल्कुल वायुरहित स्थान भी ध्यान के अनुकूल नहीं है। ध्यान के लिये गुफा अनुकूल है। 'इसीलिये योगी लोग पर्वत की गुफाओं में बैठकर ध्यान करते हैं।'

राजा महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द जी) ने कहा है – 'किसी-किसी स्थान पर कोई एक समय ध्यान के लिए अनुकूल रहता है।'' वह भी है। स्थान की महिमा है। ऊँचा पर्वत ध्यान का स्थान है। हम लोगों ने देखा है, पुरी भजन-कीर्तन के लिये अनुकूल स्थान है, ध्यान के लिए नहीं। वहाँ भजन कीर्तन का एक भाव आता है।

ये सब जो भी हो। असली बात है इच्छा। इच्छा होने से किसी भी स्थान पर होगा। ठाकुर का जीवन देखने से ही हुआ। सम्पूर्ण जीवन की सारी साधनायें उन्होंने एक स्थान पर ही कीं। हमलोगों को भी किसी भी प्रकार से ठाकुर को मन में दृढ़ता से पकड़कर रखने का प्रयास करते जाना होगा। मन एकाग्र होने पर स्वाभाविक रूप से ध्यान होता रहेगा। इस प्रसंग में उत्तरकाशी की एक घटना याद आ रही है। एक वयस्क साधु ने देखा कि एक नवीन साधु बार-बार ध्यान का स्थान बदल रहा है। उन्होंने पूछा – 'ऐसा क्यों कर रहे हो?' युवक साधु ने कहा – 'जहाँ भी बैठता हूँ, वृक्ष पर बैठे पक्षी बहुत कलरव, शोर करते रहते हैं।'' इस बात को सुनकर वृद्ध साधु ने कहा – 'बाबा ! पहले अपने मन का कलरव, शोर बन्द करो।''

प्रश्न – महाराज ! ध्यान तो एक प्रकार से कल्पना है। कल्पना कैसे सद्‌वस्तु का अनुभव करायेगी?

महाराज – ध्यान और कल्पना में अन्तर है। जो विषय वास्तविक नहीं है, उस अवास्तविक विषय का चिन्तन करना कल्पना है। ध्यान में जिस वस्तु का चिन्तन किया जाता है, उसके अस्तित्व में हमलोग विश्वास करते हैं। हम लोग यह विश्वास करते हैं कि हमारे ध्यान की वस्तु का अस्तित्व है। यद्यपि हमलोग अभी कल्पना की सहायता से ही ध्यान करने का प्रयास कर रहे हैं, फिर भी वह केवल कल्पना नहीं है। अवास्तविक वस्तु, जिसकी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है, उसका चिन्तन करना कल्पना है। जैसे आकाश में उद्यान की कल्पना करना। इसका वास्तविक अस्तित्व नहीं है, यह केवल कल्पना है। आकाश में उद्यान होना सम्भव नहीं है। किन्तु ध्यान की विषय-वस्तु के अस्तित्व में हम लोग अविश्वास नहीं करते। स्वामीजी ने एक स्थान पर कहा है कि यदि हमलोगों का वास्तविक स्वरूप ब्रह्मतत्त्व नहीं होता, तो हजार मनन-निदिध्यासन हमलोगों को ब्रह्म स्वरूप की उपलब्धि नहीं करा पाता। इसलिए ब्रह्मत्व हमारी सत्ता है, अस्तित्व है। मनन और निदिध्यासन केवल उस स्वरूप के विपरीत ज्ञान या अनुभव को दूरकर हमारे स्वरूप के अनुभव में सहायता करता है।

प्रश्न – जप-ध्यान करने के लिये बैठने पर बीच-बीच में हमलोगों का मन तो लगता नहीं, तब क्या उठ जायेंगे?

महाराज – उठ क्यों जाओगे? ध्यान में मन लगे, इसके लिये प्रयास करो। उससे भी न हो तो कुछ सद्‌ग्रन्थ आदि का अध्ययन कर लेना। पुनः बैठने का प्रयास करना। ध्यान-जप के समय मन में जो कुछ भरा पड़ा है, वही आता है। अभी मन में उतनी शक्ति नहीं है कि बुरे विचारों को हटाकर ठाकुर का चिन्तन करोगे। इसलिए ये सब तो होगा ही। इसका उपाय है – यथासम्भव मन से अन्य विचारों को हटाकर उनका (ठाकुर का) चिन्तन अधिक करना। नहीं तो, जिसमें मन भरा है, वही बुलबुला उठेगा। वही सब मन को चंचल कर देता है और साधक को आसन से उठने को बाध्य कर देता है। असली बात है कि मन सारा दिन कार्य में लगा रहता है, गप्प करता है, विभिन्न प्रकार से समय बिताकर थोड़ी देर के लिए साधना करने बैठता है। क्या साधना इतनी सरल है? ऐसा करने से क्या होगा? प्रत्येक क्षण चला जा रहा है, दिन व्यर्थ बीत रहे हैं। यह बात सोचकर मन बेचैन हो जाता है तब अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता। हम लोगों में वह व्याकुलता कहाँ है – (हमलोगों का) अधिकांश भाव रहता है – हो रहा है, होगा, जा रहा हूँ, जाऊँगा। यद्यपि वैसी तीव्र व्याकुलता सामान्य व्यक्ति में नहीं होती। कितने वर्षों के निरन्तर संघर्ष और अनवरत साधना से व्याकुलता आती है। व्यग्रता, व्याकुलता होनी चाहिए। राजा महाराज ने कहा है – उनके नहीं प्राप्त करने की मन में एक व्याकुलता, व्यग्रता जगाकर रखनी चाहिए। यह बहुत बड़ी बात है। व्याकुलता अग्रसर, आगे बढ़ने का मूल है। उनको नहीं प्राप्त करने की व्यग्रता होनी चाहिए। ❍❍❍

मीरा : दर्शन और वाणी

डॉ. रामनिवास

हिन्दी प्रवक्ता, क्षेत्रिय शिक्षा संस्थान, अजमेर (राजस्थान)

आत्मज्ञान की अनुभूति से ओतप्रोत संत कवियों और भक्तों में मीराबाई का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इनका सच्चा ईश्वरप्रेम गुरुभक्ति, निष्ठा, दृढ़ता और सत्य को समर्पित सर्वस्व जीवन आज भी हमें प्रेरणा देता है। मीरा भारतीय संस्कृति और साहित्य के आकाश में एक जाज्वल्यमान नक्षत्र की भाँति अपना प्रकाश बिखेर रही हैं। अपने प्रारंभिक जीवन में मीरा सगुण-साकार भगवान कृष्ण की उपासिका थीं। जैसे-जैसे यह प्रभु प्रेम गहराता हुआ परिपक्व होने लगा, तो सगुण-साकार ईश्वर ही निर्गुण-निराकार ईश्वर हो गए। संत रविदास के संपर्क में आने पर वे 'सुरति शब्द योग' की दीक्षा लेकर उनकी शिष्या बन गईं। गुरु-कृपा से मीरा की भक्तिधारा को एक निश्चित दिशा मिली –

मीरा सत्गुरू देव की करैं वंदना आस।
जिन चेतन आत्म कियो धन भगवान रविदास।।

मीरा ने मनुष्य जन्म को अन्य संतों की भाँति बहुत महत्त्व दिया है। जन्म-मरण के कठोर बंधन से मनुष्य जन्म में ही छूटा जा सकता है। भव-सागर से पार उतरने के लिये नर-देह एक नौका के समान है। मनुष्य का जन्म प्राप्त होना ईश्वर की ओर से जीवात्मा का अनमोल उपहार है। यह चौरासी लाख योनियों में जन्म लेने के बाद मिलता है। सूक्ष्म शरीरधारी स्वर्ग में बैठे देवता भी मनुष्य जन्म के लिये तरसते हैं –

दुर्लभ नर देही तमे तत्पर थाव।
भव सागर तरवा ने बेसवा ने नाव।।

आत्मज्ञान प्राप्त होने पर बाहरी कर्मकाण्ड छूट जाते हैं। तीर्थ-स्नान, व्रत-पूजा की आवश्यकता नहीं रहती। अन्तर्मुखी ध्यान में ये सारे कार्य साधक को बंधन ही दिखाई देते हैं। जब हृदय में अखण्ड प्रकाश का उजाला रात-दिन हो रहा हो, तो कहीं अन्यत्र जाने की क्या आवश्यकता है? काशी-दर्शन और गंगा-यमुना की पावन निर्मलधारा अब उसके शरीर में ही झर-झर बह रही है। उसके हृदय में अविनाशी प्रभु विराज रहे हैं –

मैं हरि चरनन की दासी।
अब मैं काहे को जाऊँ कासी।।
घट में ही गंगा घट में ही जमना
घट-घट है अविनाशी।।

सत्संग ! तू सत्संग के अमर रस को चखकर तो देख! मात्र दो घड़ी के अल्प समय में ही तुझे आत्मज्ञान की प्राप्ति हो जाएगी। वेद इसकी साक्षी दे रहे हैं। तू संसार की मोह निद्रा से जाग –

सत्संग नो रस चाख प्राणी,
तूं तो सत्संग तो रख चाख।
सत्संग थी बे घड़ी माँ मुक्ति, वेद पुरे छे साख।।

संतों और ईश्वर में कोई भेद नहीं है। संत ही ईश्वर से जीव को मिलाते हैं। 'मुक्ति का मार्ग', संत ही बताते हैं। मैं संतों की हूँ और संत ही मेरा जीवन हैं। वे ही मेरे प्राण हैं, जो मुझे सर्वाधिक प्रिय हैं। मीरा कहती हैं कि जिस प्रकार मक्खन में घी समाया रहता है, ठीक उसी प्रकार मैं संतों की संगति में एकाकार हो रही हूँ –

साधु हमारे हम साधुन के साधु हमारे जीव।
साधुन मीरा मिल रही, जिमि माखन में घीव।।

मनुष्य जैसा सुन्दर और प्रकृति के सभी जीवों में सर्वश्रेष्ठ जन्म बार-बार नहीं मिलता। न जाने किस पुण्य के प्रताप से मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है। संसार के व्यर्थ के धंधों और माया-मोह में उलझकर मनुष्य इस अनमोल जीवन को यूँ ही गँवा देता है। प्रत्येक क्षण आयु घटती जा रही है। आयु घटते समय नहीं लगता है। जिस प्रकार वृक्ष के पत्ते एक बार अलग होने पर वे दोबारा उस पर नहीं लगते। ऐसे ही मनुष्य की आयु के दिन हैं जो बीत जाने पर पुनः वापस नहीं आते। भवसागर अति दुस्तर है इसकी धारा अति विषम है, जो प्रत्येक जीव को अपनी चपेट में ले लेती है। 'रामनाम' का भक्ति रूपी बेड़ा ही पार लगा सकता है। यह संसार चौपड़ के खेल की बाजी के समान है। मनुष्य सुरति का ज्ञान रूपी पासा फेंककर आत्मा रूपी सार अर्थात गोटी को अपने निज घर परमात्मा से मिला दे या संसार के भ्रमजाल में उलझकर बाजी हार जाय। यह मनुष्य के हाथ में ही है। सभी साधु-संत-महंत

और आत्मज्ञानी पुरुष पुकार कर सचेत कर रहे हैं। मीरा कहती है कि मेरे तो प्रभु गिरधर हैं और इस संसार में जीवन चार दिन के समान अति अल्प है –

नहीं ऐसो जनम बारम्बार ।
नहिं जानूँ कुछ पुण्य प्रगटे, मानुसा अवतार ।।
बढ़त पल पल, घटत छिन छिन, जात न लागे वार ।
बिरछ के ज्यों पात टूटै लगे नहीं पुनि डार ।।
भौसागर अति जोर कहिये, विषय ऊँडी डार ।
राम नाम का बाँध बेड़ा, उतर परले पार ।।
ज्ञान चौंसर मँडी चोहटे, सुरत पासा सार ।
या दुनिया में रची बाजी, जीत भावैं हार ।।
साधु संत महंत ज्ञानी, चलत करत पुकार ।
दासी मीरा लाल गिरधर, जीवणा दिन चार ।।

गगन मंडल में दिव्य ध्वनि, 'अनहद नाद' लगातार गूँज रहा है। यह परमात्मा के दरबार का संगीत है। बिना किसी वाद्य-यंत्र और झालर की इस झंकार को सुनो। यह परमात्मा के अटल और स्थायी होने की सूचना है। शून्य शिखर में 'अगम ज्योति' का दीपक जगमगा रहा है, जो बिना किसी बत्ती और तेल के लगातार अपना प्रकाश बिखेर रहा है –

गगन मंडल बाजा बजै ए ।
हे म्हारी सुरता, बिन झालकर झणकार ।।
सोवन सिखर दिवलौ जगै ए ।
हे म्हारी सुरता बिन बाती बिन तेल ।।

इस शरीर में भँवर गुफा के भीतर जीव का वास है। जहाँ आत्मा रूपी भ्रमर आनन्दमग्न होकर दिव्य पुष्पों पर विचरण कर रहा है। पुष्पों से झरने वाला मकरंद और दिव्य सुगंध के परम आनन्द में भ्रमर अपनी सुधि खो बैठा है। भँवर गुफा में आत्मा रूपी नारियाँ आनन्द मग्न होकर झूल रही हैं। मेरे अन्दर के दिव्य नेत्र संसार की सुधि खोकर परमात्मा का दर्शन कर रहे हैं। संसार के भ्रमजाल में भटकने से जन्म-जन्मान्तर की सारी थकान और अज्ञान की निद्रा-तन्द्रा दूर हो गई है। अब प्रिय परमात्मा मुझसे बात कर रहे हैं –

भँवर गुफा के माँय भँवस भँवरिया ।
ज्यांरी महक, महक आवे बास, भँवर रंग भींजे ।।
भँवर गुफा के माँय नारियाँ झूले ।
ज्याँ रे पाँच तत्व घट माँय दिवलो संजोयो ।।
मगन होया दोई नैण पिया पल खोले ।
भटकत उड़ गई नींद, पिया मुंडे बोले ।।

"सत्संग पै चलना है खांडे की धार" यह बिल्कुल ठीक है। अपने अंदर और बाहर के संसार को भी जीतना होता है। हे ईश्वर, केवल एक बार मेरी ओर देखो मैं कब से प्रतीक्षारत हूँ। साथी भी शत्रु बन गए हैं। मैं सभी को कड़वी लगने लगी हूँ। तुम बिना मेरा कौन साथी है, जो मुझे संसार सागर से पार उतारे। मैं आपके विरह में जल रही हूँ, मुझे सुख-चैन नहीं है। शापग्रस्त अहिल्या का आपने उद्धार किया है। मेरे शरीर में भार ही कितना है? मुझे सतगुरु के रूप में संत रविदास मिल गए हैं, जिनकी शरणागति के प्रभाव से प्रभु रूपी वृक्ष से कटी हुई कलम रूपी शाखा पुन: उनसे जुड़ गई है। सतगुरु के दिए गए भजन, सुमिरन के प्रताप से मेरी आत्मज्योति परमात्मा की ज्योति में मिलकर एकाकार हो गई है –

तुम पलक उघाड़ो दीनानाथ,हाजिर नाजिर कबकी खड़ी ।
तुम बिन साऊ कोऊ नहीं है, डिगी नाव मेरी समंद पड़ी ।
दिन नहीं चैन रात नहीं निदिरा, सूखूँ खड़ी-खड़ी ।
बान विरह के लगे हिये में, भूलूँ न एक घड़ी ।
पत्थर की अहिल्या तो तारी, बन के बीच पड़ी ।
कहा बोझ मीरा में कहिये, सौ ऊपर एक धड़ी ।
गुरु रैदास मिले मोहिं पूरे, धुर से कलम भिड़ी ।
सतगुरु सैन दइ जब आ के जोत में जोत मिली ।

अरे मन तू अविनाशी परमात्मा के चरण कमलों का ध्यान धर ! जो कुछ भी दिखायी देता है, इसका विनाश एक दिन निश्चित है। ...शरीर की सुन्दरता और शक्ति का गर्व मत कर, यह मिट्टी में मिल जायेगा। संसार का व्यवहार चिड़ियों के खेल की तरह है, जो शाम होते ही समाप्त हो जाता है। ...योगी बनकर यदि मोक्ष-प्राप्ति हेतु साधना नहीं की, तो फिर जन्म-मरण के चक्र में दुख भोगने पड़ेंगे। हे ईश्वर ! मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूँ, मेरी यम की फाँसी काट दीजिए –

भज मन चरण कँवल अविनासी ।
जेताई दीसे धरनि गगन बिच, तेताई सब उठ जासी ।
इस देही का गरब न करना, माटी में मिल जासी ।
यो संसार चहर की बाजी, साँझ पड्या उठा जाप्ती ।
जोगी होय जुगति नहिं जानी,उलटि जन्म फिर आसी ।

अरज करौ अबला कर जोरे, स्याम तुम्हारी दासी ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फाँसी ।

जिस घर से जीव इस संसार में आया है, उसी घर में पुन: प्रवेश पा लेना ही मनुष्य जीवन का वास्तविक उद्देश्य है। मीरा अब उसी घर में जाएँगी। जब-जब उस घर की याद आती है, आँखों से टप-टप आँसू झरने लगते हैं। परमात्मा से बिछुड़ने का इतना दुख है कि जैसे हृदय में धँसकर तीर कसक-कसककर महा दुख देता है। ऐसी पीड़ा में रात-दिन नींद नहीं आती है और अन्न-जल भी नहीं सुहाता। मै रात-दिन दुख के कारण जागती रहती हूँ। मुझे कोई ऐसा वैद्य मिले, जो देश-विदेश की पहचान कराये और मेरा दुख सदा के लिये मिटा दे। मैं संसार में भ्रमित हूँ, अपना दुख किसे कहूँ? मैं अपने घर को खोज रही हूँ, परन्तु कोई मुझे भेद, रहस्य नहीं बताता। सतगुरु रविदास मिले, तो मेरी व्यथा दूर हो गई। उन्होंने मेरी आत्मा को शब्द रूपी चिह्न (सहदानी) देकर प्रिय परमात्मा से मिलवा दिया। मुझे अपना निजी घर मिल गया। मेरे दुखों का सदा के लिए अन्त हो गया। मैंने सारे संसार की खाक छानी और सतगुरु के चरणों की धूल सिर में धारण की तो अपना घर पहचान लिया –

मीरा मन मानी सुरत सैल असमानी ।
जब जब सुरत लगे वा घर की, पल पल नैनन पानी ।
ज्यों हिये पीर तीर सम सालत, कसक-कसक कसकानी ।
रात दिवस मोहे नींद न आवत, भावै अन्न न पानी ।
ऐसी पीर विरह तन भीतर, जागत रैन बिहानी ।
ऐसा बैद मिले कोई भेदी, देस बिदेस पिछानी ।
तासों पीर कहूँ तन केरी, फिर नहिं भरमों खानी ।
खोजत फिरूँ भेद वा घर को, कोई न करत बखानी ।
रैदास संत मिले मोहि सतगुरु, दीन्हीं सुरत सहदानी ।
मैं मिली जाय पाय पिय अपना, तब मोरी पीर बुझानी
मीरा ख़ाक ख़लक सिर डारी, मैं अपना घर जानी ।।

'राम नाम' का रंग लगने पर ही हृदय के संशय भ्रम मिटते हैं। जब तक मान का अहंकार है, तब तक प्रभु-मिलन सम्भव नहीं है। परमात्मा का प्राकट्य तभी होता है, जब स्थूल, सूक्ष्म सभी प्रकार के अहंकार और इच्छा के बीज समाप्त हो जाते हैं। ईश्वर के दर्शन होने पर सभी वस्तुएँ सुख देनेवाली बन जाती हैं। जिस सेज पर नींद नहीं आती थी, वही अब सुख दे रही है। मैं अपने प्रियतम परमात्मा के साथ प्रेम का प्याला पी रही हूँ। लोक-लाज और कुल की मर्यादा के सांसारिक बंधन मैने तोड़ दिये हैं। ईश्वर के साथ-साथ उसके भक्त ऐसे मिलते हैं, जैसे सोने के साथ सुहागा। सच्चे व्यक्ति से ईश्वर प्रसन्न होता है, झूठे से नहीं। मीरा के ईश्वर तो गिरधर नागर हैं, जिनके दर्शन से उसके भाग्य जाग उठे हैं –

राम रंग लागो मेरे दिल को धोको भागो ।
जब थी बंदी मान गुमानी, पीजी मुखउ न बोल्यो ।
अब भइ बंदी ख़ाक बराबर, साहिब अंतर खोल्यो ।
पीजी बोल्यो, अंतर खोल्यो, सेजड़ियाँ सुख दोनों।
मैं अपने प्रीतम संग राजी, प्रेम पियालो पीनो ।
लोक लाज कुल की मरजादा, तोड़ दियो सोई धागो ।
हरिजनाँ ने हरि मिले ज्यूँ सोनो मिल्यो सुहागो ।
साँचे से मेरा साहिब राजी, झूठे से मन भागो ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, भाग हमारो जागो ।

मैं इस संसार में ईश्वर का दर्शन करने आयी हूँ। उनकी अनुपम मनोहारी छवि मेरे मनमें सदा विद्यमान है। आत्मज्योति परमात्मा की ज्योति में एकाकार होने पर संसार के सारे बंधन स्वयं छूट जाते हैं। मैंने भी मुख का आँचल हटा दिया। अब सोचने से क्या होता है, जिस प्रभु-प्रेम की डोर में बँधना चाहती थी, वे मुझे मिल गए। मन के सारे संकल्प-विकल्प समाप्त हो गए। आत्मा रूपी बूँद परमात्मा रूपी सागर में समा गई। अब उसकी कोई नाम-रूप और पहचान नहीं रही –

आई देखन मन मोहनकूँ, मोरे मन मों छवि छाय रही ।
मुख को अंचलो दूर कियो तब, ज्योत में ज्योत समाय रही ।
सोच करे अब होत कहा है, प्रेम के फंदे में आय रही।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बूँद मों बूँद समाय रही।

निर्गुण-निराकार ईश्वर की साधना के ऐसे अनेक पद हैं, जो मीरा की सच्ची भक्ति का परिचय देते हैं। हृदय में उमड़ता हुआ प्रभु-प्रेम उनके काव्य साहित्य में सजीव हो गया है। मीरा की भक्ति-साधना और जीवन-सन्देश मध्यकाल के निर्गुण भक्त, संत, कवियों से पूर्णतया मिलता है। निष्काम और निर्विकार भाव से ओत-प्रोत उनके हृदय से नि:सृत वाणी आज भी हमें आत्मशान्ति और सच्ची पारमार्थिक चेतना के पथ पर चलने के लिये प्रेरणा देती है। ❍❍❍

साधना की अद्भुत प्रणाली – केनोपनिषद (१४)

स्वामी आत्मानन्द

(स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनके द्वारा कलकत्ता में प्रदत्त इस प्रेरक व्याख्यान को स्वामी प्रपत्त्यानन्द द्वारा सम्पादित कर विवेक ज्योति के पाठकों हेतु प्रकाशित किया जा रहा है।)

यहाँ पर भगवान शंकराचार्य भाष्य करते हुए लिखते हैं – **देवानां च मिथ्या-ज्ञानमुपलभ्यमैवासुरवद्देवा मिथ्याभिमानात्पराभवेयुरिति तदनुकम्पया ... ।** (३.२)

ब्रह्म के मन में ऐसा भाव आया कि ये देवता असुरों के समान अपने अहंभाव के कारण कहीं मुझसे दूर न चले जायँ, इसलिये देवताओं पर कृपा करने के लिए वे यक्ष का रूप धारण करके सामने प्रकट होते हैं।

अब इन देवताओं ने देखा उस रूप को कोई पहचान नहीं पा रहा है। वे परस्पर विचार करते हैं, एक दूसरे से प्रश्न करते हैं – यह कौन है? क्या तुम जानते हो यह यक्ष कौन है? देवताओं ने कहा कि हमें तो नहीं मालूम। तब देवताओं ने इन्द्र से कहा कि भगवन् आप अग्नि को भेजिए क्योंकि अग्नि तो जातवेद है। अग्नि ने अपनी एक उपाधि जातवेद लगा रखी थी। देवताओं ने कहा, अग्नि तो ऐसा मानता है, हम सब कुछ जानते हैं, तो इन्द्र ! आप अग्नि देवता को यह जानने के लिये भेजिये कि ये यक्ष कौन है? इन्द्र ने अग्नि से कहा –

ते अग्निमब्रुवञ्जातवेद एतद्विजानीहि किमिदं यक्षमिति तथेति ।। ३।।

हे अग्नि ! जाकर पूछो, यह जानकर आओ कि वह यक्ष, जो दिखाई दे रहा है, वह कौन है? उसने कहा – तथा इति, ठीक है, मैं जाता हूँ और जानकर आता हूँ। जब अग्नि देवता यक्ष के पास पहुँचते हैं, उस समय यक्ष ने उससे एक प्रश्न पूछा – तुम कौन हो? अग्नि ने कहा – मैं अग्नि हूँ, मैं जातवेद हूँ। अपने दोनों नाम एक साथ अग्नि बताता है, जिससे उसका पूरा परिचय यक्ष को मिल जाय। उसने दर्प से कहा – मैं अग्नि हूँ, उसे अपने अहंकार पर बहुत चोट लगी। सारी दुनिया मुझे जानती है और यह यक्ष पूछता है कि तू कौन है? फिर यक्ष ने पूछा – **तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमिति** – तुममें क्या शक्ति है? तुममें क्या विशेषता है? अग्नि ने अहंकार से कहा – **अपीदमं सर्वं दहेयं यदिदं पृथिव्यां इति ।।३/५।।** – इस पृथ्वी पर जो कुछ भी है, जलाकर खाक कर दे सकता हूँ। यक्ष ने कहा – अच्छा, इतनी शक्ति है ! संसार को जलाने की आवश्यकता नहीं। इस छोटे से घास को जलाओ तो – **तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति ।** अग्नि उसे नहीं जला सका। उसे अपने अपमान का बोध हुआ।

इस कथा के माध्यम से दर्शाया गया है कि मनुष्य अपने दर्प के कारण अपने अहंभाव के कारण, सामने जो तत्त्व दिखाई देता है, उसको नहीं समझ पाता है।

वह अग्नि जो दुनिया को जला सकता था, उसके सामने घास का तिनका रखा गया। यह तो अहंकार पर इतनी चोट पड़ी। जैसे मैं कहूँ – आप कौन हैं? मैं कहूँगा – मेरा नाम स्वामी आत्मानन्द है और देखूँगा कि मानों वह परिचय ठीक-ठीक ढंग से ग्रहण नहीं कर पर रहा है, तो मैं अपने सामने लगाऊँगा, मैं एमएससी हूँ। अच्छा आप एमएससी हैं। किसमें एमएससी है? गणित में एमएससी हूँ। एक छोटा सा प्रश्न रख दिया — ये छोटा सा हल बताइये तो? और जैसे मैं हल न कर पाऊँ और मेरा अपमान हो। यहाँ पर भी एक छोटा-सा घास का तिनका रखकर जलाने को कहा गया। किन्तु – **तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाक दग्धुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ।।३/६।।**

अग्नि ने उसके पास जाकर सारी शक्ति लगा दी, पर वह तिनका जला नहीं। उसने आकर कहा कि मैं नहीं जान पाया कि यह यक्ष कौन है? अग्नि की बड़ी तौहीनी हुई। अन्य देवता मुँह दबाकर हँसने लगे। आज अच्छा सबक मिला है इसको। जगत में बड़ा डींग हाँकता था कि सब कुछ जान लेता है, किन्तु एक यक्ष को ही नहीं जान सका। तब लोगों ने इन्द्र से कहा – भगवन् ! अब जरा वायु को भेजिए। क्योंकि वायु भी बहुत डींग हाँकता था। वायु को भेजा गया।

अथ वायुमब्रुवन्वायवेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति ।।३/७।।

हे वायो ! आप जाकर के पता कीजिये कि वह यक्ष कौन है? वायु वहाँ गया।

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीति वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ।। ३/८।।

यक्ष ने वायु से पूछा, तू कौन है? उसने कहा – मैं वायु हूँ, मातरिश्वा हूँ। मातरिश्वा का अर्थ होता है, जो सब जगह विचरता करता है। इसको मन का प्रतीक माना गया है। मन सब जगह विचरणशील है। मातरिश्वा कहने से यह बोध होता है कि उसे अपने उस गुण का अभिमान है, मैं सब जगह विचरण करता हूँ। देवताओं का यही भाव था कि अग्नि तो जान नहीं पाये, किन्तु ये तो मातरिश्वा हैं, सब जगह विचरण करते हैं, तो अवश्य वे यक्ष को जानकर आयेंगे। यक्ष ने पूछा –

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदं सर्वमाददीय यदिदं पृथिव्यामति। ३/९ ।।

यक्ष ने पूछा – तुम्हारी क्या क्षमता है? वायु ने कहा, इस पृथ्वी पर जो कुछ है, उन सबको ग्रहण कर सकता हूँ। तब यक्ष ने एक तिनका रखा –

तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति। ३/१० ।।

यक्ष ने कहा कि पृथ्वी को उड़ाने की आवश्यकता नहीं है, जरा इस तिनके को उड़ाकर दिखाओ। तब कथा कहती है कि वायु ने पूरी शक्ति से उस तिनके को उड़ाने की चेष्टा की, लेकिन उसे उड़ा नहीं सका। तब सिर झुका कर वापस लौट आया। देवताओं ने तो सिर झुका देख लिया था। उनलोगों ने वायु से पूछा – क्यों वायु ! क्या काम नहीं बना? वायु ने कहा – नहीं, मैं नहीं पहचान सका कि यह यक्ष कौन है? तब सभी देवता मिलकर इन्द्र से कहते हैं –

अथेन्द्रमब्रुवनमघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे ।। ११ ।।

हे मघवन् ! यह यक्ष कौन है, इसे आप पता कीजिए। इन्द्र 'बहुत अच्छा' कहकर उस यक्ष के पास चले गए।

इन्द्र देवताओं के राजा हैं। उन्हें बुद्धि का प्रतीक माना गया है। वे शक्तिशाली हैं, इसलिये उन्हें मघवन् कहा गया है। इन देवताओं में सबसे बलशाली तो इन्द्र ही हैं। वे राजा ही हैं। मघवन् कहकर एक और भाव प्रकट किया गया, ये जीव के प्रतीक हैं। मानों जिसे हम जीवात्मा कहते हैं, बुद्धि मानों जीवात्मा का प्रतीक है। इन्द्र यक्ष के समीप गये। किन्तु जब इन्द्र समीप पहुँचे, तो यक्ष गायब हो गया, अन्तर्धान हो गया। इन्द्र को अपने अहंकार पर ठेस लगी। वे सोचने लगे – अरे ! इन देवताओं से तो यक्ष ने बातचीत की, पर मुझे बातचीत के लायक भी नहीं समझा, यह कैसी बात है? उनके मन में ग्लानि हुई, क्या मेरे भीतर कोई कमी है, जिसके कारण इस यक्ष ने मुझसे बातचीत करना भी उचित नहीं समझा।

किन्तु वे वापस नहीं गए। वे वहीं पर खड़े होकर आत्म-विश्लेषण कर रहे थे। इतने में इन्द्र आकाश में देखते हैं। क्या देखते हैं?

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हैमवतीं तां उवाच किमेतद्यक्षमिति ।। ३/१२।।

उन्होंने साक्षात् एक अत्यन्त सुन्दर नारी को आकाश में देखा। उन्होंने पहचान लिया कि ये तो हैमवती उमा हैं, हिमालय की कन्या पार्वतीजी हैं। इन्हें सुवर्ण आभूषणभूषिता ऐसा कहा जा सकता है। इन्द्र ने प्रणाम कर पूछा – माता ! ये जो यक्ष दिखाई दे रहे हैं, वे कौन हैं? तब देवी उमा ने उत्तर दिया –

सा ब्रह्मेति होवाच ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति ।। ४.१ ।।

उमा हैमवती ने कहा – यह ब्रह्म है। ब्रह्म ने ही तुम्हें विजय दिलायी थी, तभी तुम लोग दैत्यों को हराकर विजयी बने हो। ये साक्षात ब्रह्म हैं, जिन्हें पाने के लिए तुम लोग लालायित रहते हो। वही साक्षात ब्रह्म यक्ष के रूप में तुम्हारे सामने खड़े थे, किन्तु तुम लोग अपने अहंकार के कारण सामने खड़े हुए यक्ष के रूप मे ब्रह्म को पहचान नहीं सके। ऐसी सुन्दर यह कथा है। ❍❍❍

जिस प्रकार घड़े में एक भी छेद रहने से सारा पानी धीरे-धीरे बह जाता है, उसी प्रकार साधक के अन्दर यदि थोड़ी भी संसारासक्ति रह जाए तो सब साधना व्यर्थ हो जाती है।...मन और मुख (अर्थात भीतर और बाहर) दोनों को एक करना ही यथार्थ साधना है। मुँह से तो कहते हैं, 'हे भगवान ! तुम्हीं हमारे सर्वस्व हो !' परन्तु मन में विषय-भोग को ही सबकुछ मानकर बैठे हैं। – श्रीरामकृष्ण परमहंस

जेम्स वॉट

यदि हमें पानी गरम करना हो, तो एक बर्तन में पानी डालकर चूल्हे अथवा गैस पर रख देते हैं। हमारा काम तो केवल पानी गरम होने तक ही है, उतना काम होने के बाद हम बर्तन को चूल्हे से उतार देते हैं।

आज से लगभग २७५ साल पहले की घटना है। सर्दी की रात थी। जेम्स के पिता बाहर गए हुए थे। जेम्स की माँ ने सोचा कि उनके घर लौटने पर वे उन्हें चाय पिलाएँगी। इसलिए उन्होंने चूल्हे पर एक बर्तन में पानी गरम करने के लिए रख दिया। बालक जेम्स सामने चूल्हे पर रखे पतीले को देख रहा था। उसमें पानी उबल रहा था और भाप के जोर के कारण केतली का ढक्कन बार-बार ऊपर उठ रहा था। वह भाप की शक्ति को देख रहा था और उसके मन में विचार उठ रहे थे कि किस तरह भाप की इस उर्जा को उपयोग में लाया जा सके।

जेम्स का जन्म १० जनवरी, १७३६ में स्कॉटलैण्ड स्थित ग्रीनोक नामक शहर में हुआ था। उसके पिता का नाम भी जेम्स वाट था। बालक जेम्स अपने आठ भाई-बहनों में छठे थे। बचपन में जेम्स हमेशा बीमार रहता था। जब वह १०-११ साल का हुआ तो उसे स्कूल भेजा गया। इस स्कूल में पढ़ाई कम और खेल ज्यादा होता था। उसे फिर दूसरे स्कूल में प्रवेश कराया गया। यहाँ आकर उसने बहुत पढ़ाई की, विशेषकर गणित में उसकी रुचि अधिक थी। वह क्लास में हमेशा प्रथम आने लगा।

स्कूल से खाली समय में अथवा छुट्टियों में वह अपने पिता के वर्कशाप में जाने लगा। उनके पिता अलमारी आदि वस्तुएँ बनाते थे। उनके पास सारे यन्त्र थे। जेम्स ने शीघ्र ही उन यन्त्रों को चलाना सीख लिया। १७ साल की आयु में जेम्स की माँ का देहान्त हो गया। घर की स्थिति भी धीरे-धीरे खराब होने लगी। छात्र जेम्स को नौकरी करने के लिए बाध्य होना पड़ा। वहाँ एक मेकेनिक के यहाँ उसे अपरेंटिस के तौर पर काम मिला और उसने अच्छा अनुभव प्राप्त कर लिया।

१७५४ में मात्र १८ वर्ष की आयु में उसे नौकरी ढूढ़ने के लिए लंदन जाना पड़ा। वहाँ की सड़कों पर कई दिनों तक चक्कर काटने के बाद उसे एक घड़ी बनाने वाले के यहाँ काम मिला। केवल काम ही मिला, पर वेतन कुछ भी नहीं।

२१ वर्ष की आयु में जेम्स को ग्लासगो विश्वविद्यालय में उपकरण निर्माता के रूप में नौकरी मिली। जेम्स को खोजपरक काम करने का बहुत उत्साह था। उन्होंने अपना एक छोटा-सा वर्कशाप बनाया। नौकरी के साथ-साथ उन्होंने वर्कशाप में बहुत सारे यांत्रिक उपकरण भी बनाए। यहाँ उनका सम्पर्क विश्वप्रसिद्ध वैज्ञानिकों से हुआ।

इसी बीच विश्वविद्यालय में एक पुराने ढर्रे का भाप का इंजन मरम्मत के लिए आया। वहाँ के प्राध्यापकों और विद्यार्थियों को इसे समझने में बहुत कठिनाई हो रही थी। जेम्स भाप की शक्ति के बारे में बचपन से ही सोचते आ रहे थे। उन्होंने इसे सुधारने का दायित्व लिया। उस समय वे मात्र २८ वर्ष के थे। कड़ी मेहनत के बाद जेम्स ने इसे सुधारा और उपयोग में लाने का निश्चय किया। इसको पूरी तरह से काम में लाने के लिए जेम्स को बहुत साल लग गए और १७७५ में उसे अपने इस आविष्कार का पेटंट भी मिला। वे दिन-रात इसी के बारे में सोचते रहते थे। यहाँ तक कि उनकी आर्थिक स्थिति भी खराब हो गई थी। उन्होंने अपना यह काम छोड़कर दूसरी सामान्य नौकरी की। किन्तु मित्रों की सहायता से वे पुनः इस कार्य में जुट गए। अन्ततः अनेक कष्ट-बाधाओं को पारकर एवं भाप-इंजन में निरन्तर सुधार कार्य करके उन्होंने उसे जनोपयोगी बनाया। सरकार ने उनके इस कार्य की बहुत सराहना की। उन्हें अनेक पुरस्कार भी मिले। सचमुच उनके इस आविष्कार ने समूचे विश्व में एक क्रान्ति ला दी।

❍❍❍

महापुरुषों के त्यागमय जीवन से हम भी कुछ सीखें

प्रिय युवक वृन्द !

भौतिकता की होड़ और बाह्य आकर्षण के अतिरेक में मानवीय जीवन के मौलिक गुणों को हम भूल रहे हैं, जिससे व्यक्ति का जीवन परिवार और समाज सहयोगी और सामंजस्यपूर्ण बनता है । वह है स्वार्थ-त्याग । स्वार्थ के त्याग से ही हम अधिक-से-अधिक दूसरों के जीवन में सहयोग कर उसे योग्य और सुखी बना सकते हैं । आज समाज में समाज के हित के लिये उस निस्स्वार्थता का ह्रास हो रहा है । स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा था, स्वार्थ ही सबसे बड़ा पाप और निस्स्वार्थता ही सबसे बड़ा पुण्य है। हम देखते हैं कि प्रत्येक प्राणी के विकास में प्रत्येक का एक-दूसरे के प्रति कहीं-न-कहीं त्याग है, जो परस्पर सहयोग करने को प्रेरित करता है । हमारे युवकगण अपने स्वार्थ, स्वकेन्द्रित जीवन को छोड़कर अपने भीतर निस्स्वार्थता और परोपकार की भावना का विकास करें, दूसरों को अपनी सेवा के द्वारा सुखी करने का अपने में संस्कार स्वयं डालें । गोपालकृष्ण जिन्दल जी द्वारा उल्लिखित महापुरुषों के दृष्टान्त युवाशक्ति के लिये मननीय और आचरणीय हैं ।

बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जी संस्कृत कॉलेज में प्राचार्य थे। उन्हें प्रति महीने आठ सौ रुपये मिलते थे। वे अपने अधिकांश रुपये दूसरों की सेवा में लगा दिया करते थे। बेरोजगार युवकों को नौकरी दिलाने और गरीबों की सेवा में उन्होंने अपना सर्वाधिक धन व्यय किया। अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को उन्होंने कम कर कभी-कभी बहुत परेशानी में पारिवारिक निर्वाह किया। ऐसा था उनका परोपकार के लिये स्वसुख का त्याग।

भारत के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री लाल बहादुर शास्त्री की सादगी को कौन नहीं जानता । उन्होंने कभी सरकारी सुविधाओं का अपने पारिवारिक सुख-सुविधा के लिये उपयोग नहीं किया। उनका पारिवारिक जीवन हमेशा अभावों में रहा। प्रधानमन्त्री रहने के बाद भी उनका खपड़ैला मकान ज्यों का त्यों था ।

महात्मा गाँधी ने भारत के कोने-कोने में घूमकर देश की दुर्दशा से दुखित होकर आजीवन शरीर के ऊपरी भाग के कपड़ों का त्याग कर दिया था। वे आजीवन लँगोटीनुमा एक ऊँची धोती में ही रहते थे। स्वतन्त्रता-संग्राम में मिली राशि का वे पैसे-पैसे का हिसाब रखते थे । एक बार दान में एक गहना मिला । कस्तूरबा को उसे लेने की इच्छा हुई । गाँधीजी ने उन्हें प्रेम से समझाकर शान्त कर उन्हें त्यागमय जीवन की ओर अग्रसर किया ।

भगवान श्रीरामकृष्ण परमहंस को जब एक मारवाड़ी सेठ ने बीस हजार रूपये देने की इच्छा व्यक्त की, तो उसे अस्वीकार कर दिया । उन्होंने कहा कि क्या तुम मुझे विषयी बनाना चाहते हो? श्रीरामकृष्ण को यदि अनजाने में भी सिक्के का स्पर्श हो जाता, तो उनके शरीर में बिच्छु के डंक जैसे पीड़ा होती ।

संत रैदास को मीराबाई बहुत श्रद्धा करती थीं । जब उन्होंने हीरे-मोतियों से भरे तीन थाल भेंट करना चाहा, तो उस संत ने कहा – माँ ! मैं जूतियों की सिलाई से चार पैसे रोज कमा लेता हूँ, एक पैसा गंगा मैया को, एक पैसा काशी विश्वनाथ को और एक पैसा गरीबों को दे देता हूँ, शेष एक पैसे के आटा-दाल से मेरा गुजारा आराम से हो जाता है । मैं इन हीरे-मोतियों का क्या करूँगा? उन्होंने वे हीरे-मोती सब भीड़ को लुटा दिया। वे ऐसे त्यागी सन्त थे !

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर 'आजाद' ने रिपब्लिकन आर्मी की स्थापना की थी। उसके लिए हथियार आदि खरीदने के लिये उन्होंने बहुत-सारा धन भी एकत्रित किया था। उनकी माता अत्यन्त अभावों में रहती थीं, परन्तु उन्होंने कभी भी उसमें से एक पैसा भी माँ को नहीं दिया और न ही अपने लिए उपयोग किया।

सब कुछ लुटाकर ही श्मशानवासी भगवान शंकर महादेव कहलाते हैं और सारे जगत की मनोकामनाएँ पूर्ण कर सुख प्रदान करते हैं।

इसलिये प्रिय युवा साथियो ! जीवन-निर्वाह के लिए धनार्जन आवश्यक है, किन्तु 'सादा जीवन उच्च विचार' के सिद्धान्त को अपनाएँ। अपनी जीवन-निर्वाह की आवश्यकताओं को अधिक न बढ़ाएँ और आवश्यकता से अधिक धन को समाज की सेवा में लगाकर अपने जीवन को धन्य बनावें। यही हमारी भारतीय संस्कृति है, यही हमारे देश के महान पुरुषों के त्यागमय जीवन से हमें शिक्षा मिलती है। ○○

साधक-जीवन कैसा हो? (१४)

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

(ईश्वरप्राप्ति के लिये जिज्ञासु साधना में प्रयत्नशील रहते हैं। किन्तु प्राय: वे उन चीजों की उपेक्षा कर देते हैं, जिन छोटी-छोटी चीजों से साधक-जीवन ईश्वर की ओर अग्रसर होता है। एक साधक का जीवन कैसा होना चाहिये और उसे अपने जीवन में किन-किन चीजों का ध्यान रखना चाहिये, इस पर विभिन्न दृष्टिकोणों से इस व्याख्यान में चर्चा की गयी है। प्रस्तुत व्याख्यान स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने मार्च, २०११ को रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर के आध्यात्मिक शिविर में दिया था। विवेक-ज्योति के पाठकों हेतु टेप से अनुलिखन नागपुर की सुश्री चित्रा तायडे और कुमारी मिनल जोशी ने तथा सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

व्यक्तित्व के दूसरे आन्तरिक पक्ष पर हम थोड़ा विचार करके देखें। यह स्मरण रखें, इस पर विस्तृत चर्चा हम नहीं करेंगे। बाह्य व्यक्तित्व भी आन्तरिक व्यक्तित्व से ही संचालित होता है। स्वामी विवेकानन्द ने स्पष्ट शब्दों में कहा है – मनुष्य महान कैसे बनेगा? मनुष्य पशुता से मुक्त होकर अपने देवत्व में कैसे प्रतिष्ठित हो सकता है? स्वामीजी कहते हैं – बाह्य और आन्तरिक प्रकृति पर विजय प्राप्त करके मनुष्य अपनी महानता में प्रतिष्ठित होता है, अपने स्वरूप को जान पाता है। मन में शान्ति पाता है, और जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करता है।

अभी तक हम बाहर की यात्रा कर रहे थे। बाहर की यात्रा माने बाहरी व्यक्तित्व से जुड़े हुए थे। यह ऐसी यात्रा है, जिसका कोई लक्ष्य नहीं है, कोई निश्चित गन्तव्य नहीं है। यह यात्रा हमें कहीं भी नहीं पहुँचाती। जैसे मान लीजिये किसी का बड़ा स्वस्थ सबल शरीर हो। बड़ी तीक्ष्ण बुद्धि हो। उसके पास बड़ी अच्छी नई साइकिल हो। किन्तु वह अपने गन्तव्य मार्ग से हटकर किस गोल घेरे में ही दिन-रात साइकिल चलता रहे। किसी भी व्यक्ति की बात को बिना सुने-समझे अपने मन से ही किसी गोल मैदान की परिक्रमा करता रहे, तो क्या वह अपने गन्तव्य स्थल तक पहुँच सकता है? वह कहीं भी नहीं पहुँचेगा। इसी प्रकार हम संसार के गोल चक्र में दिन-रात पागल की तरह अपने जीवन-वाहन को चला रहे हैं, जिसका कहीं अन्त नहीं है और यह हमें हमारे जीवन के लक्ष्य तक कभी नहीं पहुँचा सकता। बाहर की यात्रा गोल घेरे के अतिरिक्त कहीं नहीं पहुँचा सकती। वह केवल आवृत्ति है। इन्द्रियों से बार-बार सुख प्राप्त करने का प्रयत्न आवृत्ति होती है। इससे हम कहीं पहुँच नहीं पाते। धन, नाम, यश कमाया, जीवन का उद्देश्य केवल बहिर्मुखी रहा। अन्त में कहीं भी नहीं पहुँचे। इसलिये हम संसार के गोल घेरे से निकलकर भगवान के मार्ग पर चलें, जो हमारे जीवन का निश्चित लक्ष्य है। इसके लिए हमें आत्मनिरीक्षण का थोड़ा-सा अभ्यास करना चाहिए। क्योंकि आत्मनिरीक्षण, आत्मविश्लेषण से ही हमारे मन में संसार की असारता का बोध होगा। बिना आत्मनिरीक्षण के जानते हैं, परिणाम क्या होगा? इस घटना से आपको स्पष्ट हो जाएगा।

आत्मनिरीक्षण के अभाव में लोग सांसारिक सुख को प्रमुख मानकर स्वजनों से दुर्व्यवहार करने लगते हैं। मैं जब बम्बई प्रवचन देने गया था, तभी की यह घटना है। बम्बई की एक चार्टेड एकाउंटेंट महिला, वहीं किसी कॉलेज में पढ़ाती थी, अपनी दो संतानों के साथ ८.३० बहुमंजिले मकान से कूदकर मर गयी। उसकी कैसी मानसिक वेदना रही होगी !

एक वृद्ध दम्पती थे। पति ७५ वर्ष के और पत्नी ७० वर्ष की थीं। वे दोनो अपने पुत्र और पुत्रवधू के साथ बम्बई में रहते थे। एक बहुत ऊँचे २२-२५ मंजिल के मकान से उन दोनों दम्पती ने कूदकर आत्महत्या कर ली और एक सुसाइट नोट लिख रखा था – हमें पुत्र और हमारी पुत्रवधू हमें इतनी पीड़ा देते हैं, इतना कष्ट देते है कि अब हमारे लिए उसे सहन करना असम्भव है। हमने अपने जीवन की कमाई के सब कुछ करोड़ों रुपये इनको दे दिया था। हमेशा पुत्र तथा पुत्रवधू विवाह के बाद हमसे कहते थे कि आपकी सारी सम्पत्ति हमारे नाम कर दीजिए। ज्योंही हमने सम्पत्ति उनके नाम कर दिया, त्योंही इन लोगों ने हमारी उपेक्षा करना तथा कष्ट देना आरम्भ कर दिया। हम बहुत मानसिक कष्ट में जीने लगे। हमें ऊपर से नीचे उतरने की अनुमति नहीं थी, न ही किसी से मिलने की अनुमति थी। इसलिए हम आत्महत्या कर रहे हैं।

ये कहानियाँ नहीं हैं, सच्ची घटनाएँ हैं, जो मैं आपको बता रहा हूँ। यद्यपि ये घटनाएँ विरल हैं, किन्तु हम सब

के जीवन में भी इसकी सम्भावना हो सकती है।

उपरोक्त घटनायें मानव के बीभत्स स्वरूप को उजागर करती हैं। यदि ईश्वर हमारा लक्ष्य नहीं होगा, संसार लक्ष्य होगा, तो हमें कभी भी सुख न स्वयं मिलेगा, और न ही हम दूसरों को सुख दे सकेंगे। कल ही एक बहन मेरे पास आयी थी। वह मुझसे कहने लगी, इस जीवन से अच्छा है कि मर जाऊँ। हमारे जीवन में ऐसे विचार क्यों आते हैं? क्योंकि हम अपने आन्तरिक व्यक्तित्व से परिचित नहीं हैं। बाह्य व्यक्तित्व इतना आकर्षक लगता है कि हम इसी के पीछे पागल हो जाते हैं और अन्तर्व्यक्तित्व के बारे में कुछ भी जानने का प्रयास नहीं करते। साधक का जीवन प्रारम्भ करना हो, अपने जीवन को व्यवस्थित करना हो, तो आध्यात्मिकता तो बहुत बड़ी बात है, हमें पहले बाहर की दौड़ थोड़ी देर के लिए बन्द करके भीतर की ओर देखना प्रारम्भ करना चाहिए। श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं – 'डूब जाओ' अर्थात् अपने भीतर की ओर जाने का प्रयत्न करो। संसार के सभी महापुरुष कहते हैं, डूबो, सब कुछ भीतर है, बाहर कुछ नहीं है।

साधक को यह दृढ़तापूर्वक सोचना होगा कि आज से मैं साधक हूँ, मैंने दीक्षा ली है। अब मुझे प्रतिदिन साधना करनी होगी। अब मैं दीक्षा के पूर्व का व्यक्ति नहीं हूँ। साधना करने का निर्णय इतना दृढ़ होना चाहिए की हमारे मन पर उसकी छाप लग जाए। ये छाप कैसे लगती है? निष्ठापूर्वक नियमित साधना करने से लगती है। इसके लिए जीवन में साधना के अभ्यास की आवश्यकता होती है।

मान लीजिए आप किसी शिविर में गए हैं। वहाँ एक साथ सबके रहने की व्यवस्था है। वहाँ पचीसों लोग सोए हुए हैं। तभी कोई आकर पुकारता है अरे, संतोष उठो। बाकी २४ लोग नहीं उठते, किन्तु संतोष उठ जाता है। क्यों उठता है? उसका नाम उसके व्यक्तित्व से इतना जुड़ गया है कि नींद में भी उसे याद है कि मैं संतोष हूँ और मुझे कोई पुकार रहा है। साधक के जीवन में ये दृढ़ता अवश्य आनी चाहिए कि मैं एक साधक हूँ। स्वप्न में भी यदि साधन-विरुद्ध मन में विचार आए, तो नींद खुल जानी चाहिए कि ऐसा कैसे हो सकता है?

मान लो पिता ने जमीन, सम्पत्ति आदि के सारे कागज-पत्र बहु या बेटे को दे दिए। वृद्ध हो गए थे और एक दिन अचानक हृदयगति रुक जाने से उनकी मृत्यु हो गई। उनका अन्तिम संस्कार हो गया। दूसरे किसी भाई-बहन को यह मालूम नहीं है कि पिताजी की सम्पत्ति सम्बन्धी कागज-पत्र कहाँ हैं। केवल बड़े बेटे और बहू को मालूम है। हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम सभी भाई-बहनों को यह बता दें कि कागज-पत्र सब मेरे पास है। आओं हम सब मिलकर उचित बँटवारा कर लें।

यदि हम साधक नहीं हैं, तो संसारी लोग जैसे करते हैं, वैसा करते रहें। किन्तु यदि हम साधक हैं, तो उसके लिए प्रवचन सुनने की आवश्यकता नहीं, संसार की मार ऐसी लगेगी की वह अपने आप सिखा देगा। इसको प्रात: स्मरणीय पूज्यपाद स्वामी यतीश्वरानन्दजी महाराज चेतना में परिवर्तन की बात कहा करते थे। हमें अपनी चेतना में परिवर्तन करना होगा। तभी हमारा साधक का जीवन होगा।

अभी हमारी चेतना में परिवर्तन नहीं आया है। यदि मैं स्वयं रुचि लेकर प्रयत्न न करूँ, तो मेरी चेतना में परिवर्तन कैसे आएगा? चेतना में परिवर्तन अर्थात् चित्तशुद्धि है। हम चेतना में परिवर्तन से तुरन्त चैतन्य में प्रतिष्ठित हो जाएँगे, ऐसा नहीं है। आत्मानुभूति के पूर्व भी बहुत से स्तर हैं। साधना प्रारम्भ करते ही हम आत्मचैतन्य में प्रतिष्ठित हो जायें, ऐसा नहीं हो सकता। जिनके जीवन में ऐसा दिखाई पड़ता है, वे लोग पिछले बहुत जन्मों से साधना करते चले आ रहे हैं, तब इस जन्म में ऐसा हुआ है। हमारी चेतना या मन वर्तमान में कहाँ है, इसका हमें ध्यान रखना पड़ेगा। हमारी आन्तरिक साधना चेतना को जागृत करने के अनुकूल हो। साधना के मार्ग में प्रवृत्त होने वाली वृत्तियों से भिन्न न हो। यह काम एक दिन में नहीं होगा, पर साधना के द्वारा यह सम्भव हो सकता है। हमारे जीवन में भी यथासमय होगा। हमें अपना आत्मनिरीक्षण करते रहना चाहिए। **(क्रमश:)**

जब तक करोड़ों लोग भूखें और अशिक्षित रहेंगे, तब तक मैं प्रत्येक उस व्यक्ति को विश्वासघाती समझूँगा, जो उनके खर्च पर शिक्षित हुआ है, परन्तु जो उन पर तनिक भी ध्यान नहीं देता...मैं उसी को महात्मा कहता हूँ, जिसका हृदय गरीबों के लिए रोता है, अन्यथा वह दुरात्मा है।

– स्वामी विवेकानन्द

रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का दिव्य जीवन (२)

स्वामी भास्करानन्द

(रामकृष्ण संघ के महान संन्यासियों के जीवन की प्रेरणाप्रद प्रसंगों का सरल, सरस और सारगर्भित प्रस्तुति स्वामी भास्करानन्द जी महाराज, मिनिस्टर-इन-चार्ज, वेदान्त सोसायटी, वाशिग्टंन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Life in Indian Monastries' में किया है। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मठ, नागपुर के ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य ने किया है। – सं.)

यहाँ कुछ अन्य विषयों का विश्लेषण करना आवश्यक है। आत्मज्ञानी पुरुष जब तक दैवी प्रेरित नहीं होते, तब तक वे दूसरों के विचार को जानने का प्रयास नहीं करते, यह बात अधिकांश लोग नहीं जानते। ये महान पुरुष स्वभावत: ईश्वर में तल्लीन रहते हैं। दूसरों के विचारों को जानना उनके स्वभाव के विपरीत होता है। पूर्णत: नैतिक मूल्यों में प्रतिष्ठित होने के कारण, दूसरों के व्यक्तिगत मन में प्रवेश करना, वे अनैतिक मानते हैं। स्वामी देवानन्द आध्यात्मिक जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में थे। वे ब्रह्मज्ञ पुरुष स्वामी तुरीयानन्द जी के व्यवहार को नहीं समझ सके और उन्होंने यह समझ लिया कि स्वामी तुरीयानन्द जी ने उनके मन की सारे बातें जान ली हैं। लेकिन यह उनकी भूल थी।

इसके अतिरिक्त कोई सोचकर आश्चर्यचकित हो सकता है कि सेवक महाराज के शिकायत करने से स्वामी तुरीयानन्द जी जैसे महान संन्यासी ने स्वामी देवानन्द के बारे में प्रतिकूल धारणा क्यों बना ली? स्वामी तुरीयानन्द जी इस घटना के बारे में स्वामी देवानन्द से पूछ सकते थे कि क्या हुआ और इस प्रकार भ्रम को दूर किया जा सकता था। लेकिन स्वामी तुरीयानन्द जी जैसे महान सन्त सत्यनिष्ठा में प्रतिष्ठित होते हैं। स्वयं सत्यनिष्ठ होने के कारण वे स्वाभाविक रूप से सब पर विश्वास करते थे। इसलिये उन्होंने सेवक महाराज की बातों पर विश्वास कर लिया।

लेकिन प्रश्न यह है कि क्यों स्वामी तुरीयानन्द जी ने स्वामी देवानन्द के साथ ऐसा उपेक्षित व्यवहार किया? क्यों उन्होंने उनसे बात करना बन्द कर दिया? जैसाकि हमें अपने संघ के वरिष्ठ अनुभवी संन्यासियों से ज्ञात हुआ है, महान सन्त अपने सन्निकट रहनेवालों के स्वभाव को विभिन्न उपायों से बदल देते हैं। जैसे, कभी वे अपना नि:स्वार्थ प्रेम प्रदर्शित करते हैं, कभी डाँटते हैं और कभी उपेक्षा करते हैं। स्वामी तुरीयानन्द जी ने स्वामी देवानन्द के सम्भावित दोषों को उपेक्षा के द्वारा सुधारने का प्रयास किया। यह भी सम्भव है कि स्वामी देवानन्द स्वामी तुरीयानन्दजी से बहुत प्रेम-स्नेह प्राप्त करने के लिए आसक्त हो रहे हों। ऐसी प्रवृत्ति एक संन्यासी के लिए ईश्वर को सम्पूर्ण हृदय से प्रेम करने में बाधक हो सकती है। स्वामी तुरीयानन्द जी यह बात समझ गये। वे स्वामी देवानन्द को उनके प्रेम एवं स्नेह प्राप्त करने की इच्छा को दूर कर उनके आध्यात्मिक जीवन में सहायता करना चाहते थे।

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में स्वामी तुरीयानन्द जी बीमार थे और उनकी सेवा-शुश्रूषा के लिये संन्यासी सेवकों की आवश्यकता होती थी। वे सेवकों से कहते थे, ''तुमलोग मेरे शरीर की सेवा करो, मैं तुम्हारे मन की सेवा करूँगा।'' एकबार वे अचानक बिना किसी कारण के एक युवा संन्यासी को बहुत अधिक डाँटने लगे। बाद में दूसरे संन्यासी ने उनसे पूछा – 'आपने ऐसा क्यों किया?' तब स्वामी तुरीयानन्दजी ने उतर दिया, ''मैंने देखा कि नकारात्मक विचारों का घनघोर बादल उसके मन को आच्छन्न करने वाला है। मेरे डाँटने का उद्देश्य उसको सावधान करना था, जिससे वह उन हानिकर विचारों से अपनी रक्षा कर सके।''

बिन माँगे सब कुछ मिले

जब मैं भारत में था, तब मैंने यह घटना रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी स्वामी निरामयानन्द जी महाराज (१९११-१९८४) से सुनी थी। स्वामी निरामयानन्द श्रीरामकृष्ण परमहंस के महान शिष्य स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज के शिष्य थे। स्वामी निरामयानन्द जी का पूर्वाश्रम का नाम विभूति था। रामकृष्ण संघ में प्रवेश करने के बाद उनका नाम ब्रह्मचारी विभूति हुआ। ब्रह्मचारी विभूति जब स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज के साथ बंगाल के सारगाछी आश्रम में थे, तब यह घटना घटी थी।

माधवराव गोलवलकर नामक एक प्राध्यापक बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में लगभग १९३० में अध्यापन करते थे। विश्वविद्यालय में तीन वर्षों तक अध्यापन करने के बाद उन्होंने त्यागपत्र दे दिया और नागपुर चले गये। नागपुर में उन्होंने कानून का अध्ययन किया और वकील बन गये। वहाँ वे रामकृष्ण संघ की शाखा रामकृष्ण मठ, नागपुर के अध्यक्ष स्वामी भास्करेश्वरानन्द जी महाराज के सम्पर्क में आये। उनसे

गोलवलकर को ज्ञात हुआ कि श्रीरामकृष्ण परमहंस देव के शिष्य स्वामी अखण्डानन्द जी सारगाछी आश्रम में निवास कर रहे हैं। गोलवलकर की आध्यात्मिक व्याकुलता तीव्र हो गयी थी। वे गुरु की खोज में थे। अत: वे स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज से दीक्षा लेने के लिए सारगाछी आश्रम चले गये। दीक्षा के बाद गोलवलकर वहाँ कुछ दिन ब्रह्मचारी के रूप में रहने लगे।

आश्रम में रहते समय गोलवलकर अपने गुरु की विभिन्न प्रकार से निष्ठापूर्वक सेवा करते थे। वे छाया के समान गुरु के साथ रहते और सेवा के लिए सदैव तत्पर रहते थे।

एक दिन रात में ब्रह्मचारी विभूति ने सुना कि स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज ऊँची आवाज में किसी से वार्तालाप कर रहे हैं। विभूति को आश्चर्य हुआ कि महाराज क्यों इस समय इतनी ऊँची आवाज में बात कर रहे हैं ! जानने की उत्सुकता से वह महाराज के दरवाजे के पास आया और उसने एक आश्चर्यजनक दृश्य को देखा। दरवाजा खुला था और कमरे में लालटेन जल रही थी। स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज अपने बिस्तर पर बैठे हुए थे और गोलवलकर उनके सामने फर्श पर घुटने टेककर प्रणाम करते हुए निवेदन कर रहे थे।

स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज गोलवलकर को आशीर्वाद दे रहे थे। विभूति ने सुना कि अखण्डानन्दजी महाराज गोलवलकर से कह रहे हैं, ''तुमको ब्रह्मज्ञान होगा !''

कुछ दिनों बाद गोलवलकर अपने गुरु से अनुमति लेकर सारगाछी आश्रम से चले गये। परवर्ती काल में गोलवलकर भारत में एक प्रसिद्ध आदर्शवादी युवा-संघ के नेता के रूप में विख्यात हुए।

स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज ने गोलवलकर को जैसा आशीर्वाद दिया था, वैसा विभूति को कभी नहीं दिया, यह सोचकर वह बहुत दुखी हो गया। विभूति ने सोचा कि उसमें बहुत अधिक आध्यात्मिकता की सम्भावना नहीं है, इसलिए वह अपने गुरु के आशीर्वाद योग्य नहीं हैं।

जैसे-जैसे दिन बीतते गए, विभूति की निराशा बढ़ती गई। एक दिन स्वामी अखण्डानन्द जी ने विभूति से कहा, ''मैं शौचालय जा रहा हूँ। एक बालटी जल ले आओ, आने के बाद मैं अपना पैर धोऊँगा।'' शौचालय आश्रम के आवासीय भवन से दूर था। वह स्थान निर्जन में वृक्षों से घिरा हुआ था। विभूति ने वैसा ही किया। वह जल लेकर गुरु के पीछे चल रहा था। स्वामी अखण्डानन्द जी शौचालय के पास पहुँचे, लेकिन अन्दर नहीं गये। वे पीछे मुड़े और उन्होंने विभूति से कहा, ''विभूति ! जो जिस वस्तु की प्रार्थना करता है, वह उसे अवश्य प्राप्त करता है, लेकिन जो व्यक्ति कुछ भी नहीं माँगता, वह उससे भी अधिक प्राप्त करता है।'' ऐसा कहकर महाराज अपने कमरे की ओर वापस चले गये।

विभूति समझ गया कि यद्यपि उसने अपने गुरु को इस विषय में कुछ नहीं बताया, तथापि वे उसके दुख का कारण जान गये। वह यह भी समझ गया कि आध्यात्मिक जीवन में आशीर्वाद माँगना भी एक स्वार्थ ही है। जो पूर्ण रूप से नि:स्वार्थ हैं, जो किसी वस्तु की माँग नहीं करते, वे ही आध्यात्मिक जीवन में सर्वोच्च वस्तु प्राप्त करते हैं।''

सन्तों का अपने शरीर के साथ तादात्म्य नहीं रहता

एक बार रामकृष्ण मठ-मिशन के संघाध्यक्ष स्वामी शिवानन्द जी महाराज अस्वस्थ थे। एक भक्त ने उनसे पूछा, ''महाराज आप कैसे हैं?''

स्वामी शिवानन्द जी ने उत्तर दिया, ''मेरा शरीर ठीक नहीं हैं, लेकिन मैं स्वस्थ हूँ।''

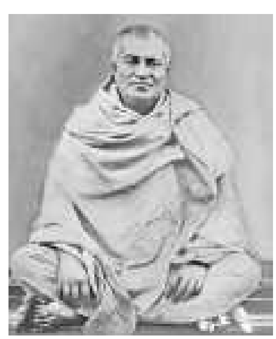

स्वामी शिवानन्द जी के शिष्य स्वामी पावनानन्द ने मुझे शिवानन्दजी के बारे में यह घटना बतायी थी, जिसमें यही भाव और अधिक रूप से व्यक्त हुआ है।

स्वामी शिवानन्द जी की अस्थमा रोग अचानक बढ़ गया था। वे शय्याग्रस्त हो गये। उनका दर्शन करने के लिए स्वामी पावनानन्द एक दिन बेलूड़ मठ आये।

वे शिवानन्दजी महाराज के कमरे में गये और उनको प्रणाम करने के बाद चुपचाप फर्श पर बैठ गये। वे अपने

गुरुदेव के तीव्र कष्ट को देखकर बहुत ही दुखी हुए। स्वामी शिवानन्द जी महाराज बहुत ही कष्ट से साँस ले रहे थे और लगातार खाँस रहे थे। साँस लेने में कष्ट होने के कारण उनका गौर मुख-मंडल लाल हो गया था। स्वामी पावनानन्द के मन में यह दुविधा चल रह थी, "मेरे गुरु ब्रह्मज्ञ पुरुष हैं और इस युग के अवतार भगवान श्रीरामकृष्ण परमहंस देव के शिष्य भी हैं। तब वे क्यों इतना कष्ट भोग रहे हैं?"

जैसे ही उनके मन में यह विचार आया, वैसे ही स्वामी शिवानन्द जी महाराज तेजोमय मुख-मंडल के साथ बिस्तर पर बैठ गये तथा स्मित हास्यपूर्वक शिष्य की ओर देखने लगे। उनके चेहरे से दुख के सारे लक्षण अदृश्य हो गए।

स्वामी पावनानन्द यह अद्भुत भावान्तर देखकर विस्मित हो गए। उन्हें अनुभव हुआ कि स्वामी शिवानन्द जी किसी भी क्षण अपने मन को शरीर से अलग कर सकते हैं। वे शरीर में रहते हुए भी उससे पूर्ण रूप से मुक्त थे, क्योंकि वे जीवनमुक्त पुरुष – शारीरिक बन्धनों से मुक्त थे। **(क्रमशः)**

नदी नर्मदा की बही जा रही है

रवीन्द्र भारती

नदी नर्मदा की बही जा रही है।
सदी वर्मदा की चली जा रही है।।
न रुकना ही जाना, न झुकना ही जाना,
कहने को जो भी कहता जमाना।
निडरता से कल-कल बही जा रही है,
श्रीमुख से हर-हर कही जा रही है।।
मुसीबत के जंगल हैं, भँवरी कगारे,
बिघ्नों के पर्वत के कटते किनारे।
मिले राह जो संग लिये जा रही है,
भक्तों के मन को हर्षा रही है।।
कहीं ऊँचे झरने गिरने को आकुल,
भयंकर है गह्वर निगलने को व्याकुल।
गिरी चोट खा उठ चली जा रही है,
यात्री के मन को भी ललचा रही है।।
ढूँढ़ेगी सागर, उसे जा मिलेगी,
सागर थी रेवा, अब सागर बनेगी।
जहाँ से ये निकली, वहीं जा रही है।
सृष्टि–प्रलय में हो विलय जा रही है।।

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

२८९. मणिमुक्ता माँगू नहीं, माँगू सुगंधित फूल

मिश्र देश में नकिबेन नामक एक परोपकारी एवं न्यायी राजा था। भगवान का वह भक्त भी था। सादगी, सच्चाई सहिष्णुता, संयम आदि गुण उसमें कूट-कूट कर भरे थे। इससे राज्य की प्रजा अत्यन्त सुखी थी। एक दिन नीलदेवता ने उस पर प्रसन्न हो उसे सोने की एक तलवार देते हुए हुए कहा, "तुम्हारी प्रजावत्सलता से प्रसन्न होकर मैं तुम्हें यह तलवार दे रहा हूँ। मेरी कामना है कि विश्वविजयी बनकर तुम दिगदिगन्त में अपनी कीर्तिपताका फैलाने में सफलता प्राप्त करो।" राजा ने कहा "भगवन्, आपकी यह तलवार मेरे किस काम की? आप इसे अपने पास ही रखें।" नीलदेव ने तलवार वापस लेते हुए कहा, "तब इस पारसमणि को रखो। तुम्हारे राज्य में अकाल भूकम्प, महामारी जैसी प्राकृतिक आपदा आने पर तुम्हारी प्रजा पर भूखे मरने की स्थिति नहीं आएगी।" नहीं, यह मेरे काम की नहीं। राजा ने कहा, "मेरा खजाना सोने की मुहरों से भरा है, मेरी प्रजा स्वावलम्बी है। खेतों में पर्याप्त फसल होने से राज्य धन-धान्य से परिपूर्ण है। इसलिये मुझे किसी भी प्रकार के लोभ-मोह में न डालें।

"फिर तू ही बता, तुझे क्या चाहिये? मैं तुझे कुछ दिये बिना वापस नहीं जाऊँगा।' देवता ने कहा। राजा बोला, "आप आग्रह ही कर रहे हैं, तो मुझे एक सुंगधित फूल दीजिए जो सबको तरोताजा और प्रसन्न रहने की प्रेरणा देगा। मैं इससे शिक्षा ग्रहण कर जन-कल्याण रूपी सुंगध से प्रजाजनों के जीवन को महकाने का प्रयास करूँगा।"

स्नेह, स्निग्धता, सौन्दर्य और सुकुमारता इन गुणों से युक्त फूल उज्ज्वल चरित्र के प्रतीक होते हैं। जिस प्रकार वे सुंगध-बिखेरकर सबको प्रमुदित करते हैं, उसी प्रकार हमें भी अपने शील और गुणवत्ता से सबको प्रसन्नचित्त रखने में कोई कमी नहीं करनी चाहिये।

मनुष्य से प्रेम करने पर दुख-कष्ट उठाना ही पड़ता है। भगवान से जो प्रेम कर सकता है, वही धन्य है, उसे कोई दुख-कष्ट नहीं रहता।

– श्रीमाँ सारदा देवी

प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका

श्रीशंकराचार्य

किं गहनं स्त्रीचरितं कश्चतुरो यो न खण्डितस्तेन।
किं दुःखमसन्तोषः किं लाघवमधमतो याञ्चा।।९।।

प्र. सबसे गहन वस्तु क्या है?

उ. स्त्री का चरित।

प्र. चतुर (कुशल) व्यक्ति कौन है?

उ. जो स्त्री के प्रभाव से खण्डित नहीं हुआ है।

प्र. दुख क्या है?

उ. असन्तोष ही दुख है।

प्र. लघुता (छोटापन) क्या है?

उ. अधम व्यक्तियों से याचना करना लघुता है।

किं जीवितमनवद्यं किं जाड्यं पाठतोऽप्यनभ्यासः।
को जागर्ति विवेकी का निद्रा मूढता जन्तोः।।१०।।

प्र. (आदर्श) जीवन क्या है?

उ. निष्पाप रहना ही आदर्श जीवन है।

प्र. जड़ता क्या है?

उ. पढ़े-सुने हुए विषयों को अभ्यास में न लाना।

प्र. जागता कौन है?

उ. विवेकी व्यक्ति सदैव जागृत रहता है।

प्र. निद्रा क्या है?

उ. जीव की मूर्खता (संसारीपना) ही निद्रा है।

नलिनी-दल-गत-जलवत्तरलं किं यौवनं धनं चायुः।
कथय पुनः के शशिनः किरणसमाः सज्जना एव।।११।।

प्र. कमल के पत्ते पर स्थित जल के समान अस्थिर कौन है?

उ. यौवन, धन और आयु।

प्र. चन्द्रमा की किरणों के समान शीतल कौन है?

उ. सज्जन व्यक्ति ही चन्द्रमा की किरणों के समान शीतल हैं।

को नरकः परवशता किं सौख्यं सर्वसंगविरतिर्या।
किं सत्यं भूतहितं प्रियं च किं प्राणिनां असवः।।१२।।

प्र. नरक क्या है?

उ. पराधीनता ही नरक है।

प्र. सुख क्या है?

उ. सभी विषयों से वैराग्य सुख है।

प्र. सत्य क्या है?

उ. सभी प्राणियों का हित ही सत्य है।

प्र. सभी प्राणियों को प्रिय क्या है?

उ. प्राण सभी को प्रिय हैं।

कोऽनर्थफलो मानः का सुखदा साधुजनमैत्री।
सर्वव्यसनविनाशे को दक्षः सर्वथा त्यागी।।१३।।

प्र. अनर्थ फलकारी क्या है?

उ. मान (अभिमान) अनिष्टकारक है।

प्र. सुख देने वाली वस्तु क्या है?

उ. साधु-सज्जनों की संगति सुखदायक है।

प्र. सर्व प्रकार के कामादि व्यसनों को नाश करने में कौन निपुण है?

उ. जिसने सब विषयों का त्याग किया है।

किं मरणं मूर्खत्वं किं चानर्घं यदवसरे दत्तम्।
आमरणात् किं शल्यं प्रच्छन्नं यत्कृतं पापम्।।१४।।

प्र. मृत्यु क्या है?

उ. मूर्खता ही मृत्यु है।

प्र. बहुमूल्य वस्तु क्या है?

उ. उचित अवसर पर उचित व्यक्ति को दी गई वस्तु अमूल्य है।

प्र. मृत्यु पर्यंत शूल की तरह चुभने वाला (दुख देने वाला) क्या है?

उ. छिपकर किया हुआ पापकर्म।

कुत्र विधेयो यत्नो विद्याभ्यासे सदौषधे दाने।
अवधीरणा क्व कार्या खल-परयोषित्-परधनेषु।।१५।।

प्र. प्रयत्न कहाँ करना चाहिए?

उ. विद्याभ्यास, अच्छी औषधि और दान के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

प्र. उपेक्षा कहाँ करनी चाहिए?

उ. दुष्ट मनुष्यों में, परस्त्री और परधन में उपेक्षा का भाव रखना चाहिए।

भगिनी निवेदिता : ईश्वर के चरणों में दो बार निवेदित

स्वामी तन्निष्ठानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

(भगिनी निवेदिता की १५० वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में उनके जीवन और सन्देश से सम्बन्धित यह लेखमाला 'विवेक ज्योति' के पाठको के लाभार्थ आरम्भ की गई है। – सं.)

भारत के ही नहीं अपितु, सारे विश्व के विद्वानों ने जिनकी प्रशंसा की है, वे महान, तेजस्विनी, सर्वतोमुखी प्रतिभा-सम्पन्न सम्पूर्ण संसार में 'सिस्टर निवेदिता' (भगिनी निवेदिता) के नाम से विख्यात हैं। वे स्वामी विवेकानन्द की अनन्य शिष्या थी । उनकी गुरुभक्ति अनन्य थी । उनका भारत के प्रति विलक्षण प्रेम था और भारत की शिल्प-कला और उसके इतिहास के प्रति उनका अद्भुत आकर्षण था । इस बहुआयामी व्यक्तित्व के कारण वे सारे जगत के लिए प्रेरणा का स्रोत बन गईं। यद्यपि उनका जन्म भारत में नहीं हुआ था, तथापि भारतभूमि की उन्होंने मातृभूमि के समान सेवा की । भारतवासियों के कष्टों को दूर करने के लिए उन्होंने तन-मन-धन से सेवा की और अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। उनका जीवन साहस, देशभक्ति तथा निष्ठा का अद्भुत सम्मिश्रण है और समस्त मानव जाति के लिए एक बहुमूल्य देन है। भारत में आकर पाश्चात्य संस्कृति के बन्धन तोड़कर उन्होंने न केवल भारतीय संस्कृति, और जीवनपद्धति को अपनाया, बल्कि सनातन हिन्दू धर्म और आध्यात्मिक जीवन को स्वीकार कर भारत के सर्वांगीण विकास के लिए दीर्घकाल तक संघर्ष किया। नारी-शिक्षा, सामाजिक विकास एवं साहित्यिक सेवा में उनका योगदान अद्भुत था। उनका जीवन भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के क्रान्तिकारियों के लिए प्रेरणा का स्रोत था। उनके इन्हीं गुणों के कारण कविवर श्रीरवीन्द्रनाथ टैगोर ने निवेदिता को 'लोकमाता' की उपाधि से गौरवान्वित किया था। स्वामी विवेकानन्द के नव-भारत निर्माण के स्वप्न को साकार करने में उन्होंने महान भूमिका निभाई थी ।

निवेदिता के जीवन की दो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं। प्रथम उनके जन्म लेने के बाद उनकी माँ ने उन्हें ईश्वर के चरणों में निवेदित किया। द्वितीय जब उन्हें स्वामी विवेकानन्द ने दीक्षा प्रदान कर नवजीवन प्रदान किया। इस प्रकार उनका दो बार जन्म हुआ – जन्म और पुनर्जन्म !

निवेदिता का पूर्वनाम कुमारी मार्गरेट एलिजाबेथ नोबल था। उनका जन्म उत्तर आयरलैण्ड के डानगैनन नामक एक छोटे से गाँव में दिनांक २८ अक्तूबर, १८६७ ई. को हुआ था। उनके पिता का नाम सेमुएल रिचमण्ड नोबल और माता का नाम मेरी ईसाबेल था। उनके माता-पिता दोनों धार्मिक स्वभाव के थे। उनकी माँ मेरी ईसाबेल अपनी प्रथम सन्तान के जन्म के पूर्व बहुत ही व्यग्रता का अनुभव कर रही थीं। अन्य सभी धार्मिक महिलाओं के समान उन्होंने भी संकल्प किया कि यदि उनके शिशु का जन्म सुरक्षित होता है, तो वे उसे ईश्वर-सेवा में समर्पित कर देंगी। उनका वह संकल्प पूर्ण हुआ। उनकी प्रथम सन्तान मार्गरेट एलिजाबेथ नोबल ने अपना सम्पूर्ण जीवन नर-नारायण की सेवा में समर्पित कर अपनी माँ के संकल्प को पूर्ण किया ।

मार्गरेट नोबेल जब भारत में आयीं, तो स्वामीजी ने उन्हें ब्रह्मचर्य-दीक्षा देकर ईश्वर के चरणों में निवेदित किया। शुक्रवार, २५ मार्च, १८९८ को ईसाई भोजोत्सव का दिन था, जिसे ईसाई लोग एक उत्सव के रूप मे मनाते हैं। इस विशिष्ट दिन गेब्रियल नामक देवदूत ने माता मेरी को भविष्य में जन्म लेनेवाले भगवान ईसा मसीह के विषय में बताया था। इस शुभ अवसर पर स्वामी विवेकानन्द ने मार्गरेट को ब्रह्मचर्य-दीक्षा दी । यह दिन मार्गरेट के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। उस दिन सुबह स्वामीजी नीलाम्बर मुखर्जी के उद्यान भवन, बेलूड़ में आए। तब रामकृष्ण मठ वहीं किराए के मकान में था। स्वामीजी मार्गरेट को मंदिर ले गये और जीवन के नये क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए सर्वप्रथम उन्हें भगवान शिव की पूजा सिखाई। इसके बाद उन्हें ब्रह्मचर्य मन्त्र में दीक्षित कर 'निवेदिता' नाम दिया। निवेदिता का अर्थ है – समर्पिता, जिसने अपने जीवन को समर्पित कर दिया हो। इस अनुष्ठान के अन्त में स्वामीजी ने उन्हें भगवान बुद्ध के चरणों में पुष्पांजलि अर्पित करने के लिए कहा। इसके पश्चात् स्वामीजी ने उनसे भावावेश में कहा, "जाओ और उस महान व्यक्ति का अनुसरण करो, जिसने ५०० बार जन्म लेकर अपना जीवन लोक कल्याण के लिए समर्पित किया और उसके बाद बुद्धत्व प्राप्त किया।" पूजा अनुष्ठान के बाद वे सीढ़ी से उपरी मंजिल पर गये। वहाँ स्वामीजी ने शिवयोगी के समान अपने सारे शरीर पर

(शेष भाग अगले पृष्ठ पर)

मित्रता का आदर्श

अरुण चूड़ीवाल, कोलकाता

सनातन भारतीय कथा-प्रवाह में मित्रता के दो स्मरणीय प्रसंग हैं – भगवान श्रीराम की सुग्रीव के साथ मित्रता एवं भगवान श्रीकृष्ण की सुदामा के साथ मित्रता। श्रीराम-सुग्रीव की शृंखला में ही श्रीराम-विभीषण की मैत्री है। रामायण एवं श्रीमद्भागवत के मैत्री प्रसंगों में भगवान की कृपा भौतिक सम्पदा के रूप में मित्र को प्राप्त होती है। सुदामा को अपार धन तथा सुग्रीव-विभीषण को राजपद मिलता है। भगवान तीनों मित्रों के साथ तटस्थ भाव से रहते हैं और मित्र कामनापूर्ति से आनन्दपूर्ण हो जाते हैं।

समस्त अवस्थाओं में तटस्थ रहना महाभारत की गीता का मूल आधार है। भगवान बार-बार शिष्य और मित्र अर्जुन को स्थितप्रज्ञ तथा धीर बने रहने के लिए विभिन्न मार्ग प्रदर्शित करते हैं। पूतनावध से शिशुपालवध तक रासपंचाध्यायी से रुक्मिणीहरण तक श्रीकृष्ण धीर बने रहते हैं।

मित्रता के आदर्श के रूप में उफनते हुए दूध तथा पानी की मित्रता की कथा बहुत प्रचलित है। योगेश्वर श्रीकृष्ण मित्रता में किस प्रकार भावुक हो जाते हैं, इसका अद्भुत दृष्टान्त महाभारत के द्रोण पर्व के जयद्रथ वध एवं घटोत्कच पर्वों में प्राप्त होता है।

अर्जुन अपने भाइयों तथा मित्र श्रीकृष्ण से विचार-विमर्श किये बिना ही जयद्रथ-वध और अग्निप्रवेश की प्रतिज्ञा कर लेते हैं। जयद्रथ वध की दुरूहता से श्रीकृष्ण चिन्तित हो उठते हैं, रात्रि में उन्हें नींद नहीं आती है। ''अर्जुन पर जीवन संकट है, मुझे स्त्री, कुटुम्बीजन, भाई बन्धु, दूसरा कोई भी कुन्तीपुत्र अर्जुन मित्र से अधिक प्रिय नहीं है।'' (द्रोणपर्व प्रतिज्ञा ७९/२६) यह वचन श्रीकृष्ण अर्जुन को सुलाने के बाद अपने सारथि दारुक से कहते हैं।

कर्ण को इन्द्र प्रदत्त अमोघ शक्ति प्राप्त होती है। इस शक्ति का प्रतिकार किसी के पास नहीं है। श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं, कर्ण का रथ सामने आने पर उसे माया से भ्रमित कर शक्ति चलाने से रोकते रहे हैं। (द्रोणपर्व – घटोत्कच पर्व १८२/४०)

कर्ण विवश होकर उस अमोघ शक्ति से घटोत्कच का वध कर देता है। भीमपुत्र की वीरगति से जहाँ समस्त पाण्डव शिविर शोकाकुल हैं, वहीं श्रीकृष्ण झूमते हुए नाचते लगते हैं। जीवात्मा कलेवर को छोड़कर नव कलेवर लेती है तथा सुख-दुख में समान रहनेवाले गीता प्रतिपादक एक सामान्य व्यक्ति की भाँति मित्र के प्राण बचने पर झूम उठते हैं। (द्रोणपर्व - घटोत्कच पर्व - १७०/३)

दारुक की ही तरह श्रीकृष्ण सात्यकि से अपनी वेदना का वर्णन करते हैं कि घटोत्कच-वध तक उन्हें नींद नहीं आ रही थी। (द्रोणपर्व – घटोत्कच पर्व १८२/४१) क्योंकि कर्ण के पास वह अजेय शक्ति यथावत थी। मित्र का कष्ट, अनिष्ट, पीड़ा, आपदा अपने स्वयं के कष्टों से अधिक अनुभूति ही मित्रता का चरम आधार है। उस पीड़ा में मित्र स्वयं के अडिग सिद्धान्तों को भी गौण कर देता है। महाभारत में मित्रता का यह आदर्श रूप है। ❍❍❍

(पिछले पृष्ठ का शेष भाग)

भस्म लगाया, अस्थिकुंडल पहने तथा चटाई पर पद्मासन लगाकर बैठ गये। उसके बाद वे करीब एक घण्टे तक वाद्य यन्त्रों पर मधुर संगीत के साथ भजन गाते रहे। मार्गरेट अब निवेदिता बन चुकी थीं। सचमुच उनके जीवन का यह एक सर्वाधिक आनन्द और मंगलप्रद दिन था।

गुरु प्रदत्त इस 'निवेदिता' नाम को उन्होंने अपनी ऐकान्तिक निष्ठा द्वारा पूर्णतः सार्थक कर दिखाया। नारी-शिक्षा के लिए उन्होंने एक विद्यालय की स्थापना की। अपने गुरु स्वामी विवेकानन्द के सेवा के सन्देश का उन्होंने पूरे देश में प्रचार किया। उन्हें जो जीवन-प्रकाश और अपार सामर्थ्य प्राप्त हुआ था, उसका उद्गम-स्थान स्पष्ट करने के लिए वे अपना उल्लेख 'रामकृष्ण-विवेकानन्द की निवेदिता' से किया करती थीं। उनके गुरु द्वारा स्थापित रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन में निवेदिता का योगदान अमूल्य था। उन्होंने उस पवित्र देवालय की ओर विश्व का ध्यान आकर्षित किया, जिससे भविष्य में समस्त विश्व को ज्ञान का प्रकाश मिलता रहे, मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्ति मिलती रहे। ऐसी थी ईश्वर के चरणों में दो बार निवेदित, भारत माता की सेवा में आजीवन आप्राण समर्पित, हमारी लोकप्रिय निवेदिता ! ❍❍❍

भारत की ऋषि परम्परा

स्वामी सत्यमयानन्द

(भारत वर्ष के प्राचीन ऋषियों का सरल, सरस और सारगर्भित विवरण स्वामी सत्यमयानन्द जी महाराज, सचिव रामकृष्ण मिशन, कानपुर ने अपनी पुस्तक 'Ancient Sages' में किया है। विवेक ज्योति के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है। – सं.)

मरीचि

महान ऋषि मरीचि सप्तर्षियों में से एक हैं। सनकादि कुमारों की तरह उनका जन्म भी ब्रह्मा के मन से हुआ था। किन्तु उन्होंने चारों कुमारों की तरह निवृत्ति पथ का पालन करने के बजाय संसार में रह कर प्रवृत्ति पथ का अनुसरण किया।

महर्षि मरीचि की अनेक सन्ताने हुईं। उनमें से एक कश्यप ऋषि थे, जिनके नाम से अनेक हिन्दू अपनी वंश-परम्परा बताते हैं। शास्त्रों में मरीचि को महाविष्णु की पालन-शक्ति का अवतार बताया गया है। अपनी तपस्या और सम्यक् जीवन-पद्धति से उन्होंने इतनी उन्नत अवस्था प्राप्त की थी कि पुष्कर (वर्तमान में राजस्थान) में ब्रह्माजी के यज्ञानुष्ठान में उनकी ऋत्विज के रूप में नियुक्ति की गई थी। ब्रह्माजी ने मरीचि को दस सहस्र श्लोकों से युक्त ब्रह्मपुराण प्रदान किया था। वेदों में इनका नाम प्रमुख रूप से प्राप्त होता है।

जब भीष्म कुरुक्षेत्र के समरांगण में शरशायित थे, तब महान माने जाने वाले मरीचि उनसे मिलने गए थे। बालक ध्रुव जब तपस्या कर रहे थे, तब मरीचि ने उन्हें आवश्यक निर्देश दिए थे।

मरीचि की धर्मव्रता नाम की सहधर्मिणी थीं। एकबार मरीचि उन पर क्रुद्ध हो गए, जबकि उनका कोई दोष नहीं था। कुछ गलतफहमी के कारण ऋषि ने उन पर अवज्ञा का आरोप लगाया और शाप दिया कि वे एक शिला में परिवर्तित हो जाएँ। धर्मव्रता ने अपनी निरपराधिता और वास्तविक स्थिति के बारे में अनुनय-विनय किया और प्रखर अग्नियों के बीच तपस्या करने को प्रवृत्त हुईं।

महाविष्णु उन पर प्रसन्न हुए और उन्हें वरदान माँगने को कहा। धर्मव्रता ने स्वयं को शापमुक्त करने के लिए उनसे प्रार्थना की। भगवान ने कहा कि शाप को वापस नहीं लिया जा सकता, क्योंकि यह मरीचि के द्वारा दिया गया है। उन्होंने कहा, 'यद्यपि तुम एक शिला के रूप में हो जाओगी, किन्तु वह एक पवित्र शिला होगी और तुम्हारा नाम देवव्रता होगा। भविष्य में यह शिला देवव्रता अथवा देवशिला के नाम से जानी जाएगी। ब्रह्मा, विष्णु, शिव जैसे देवता और लक्ष्मी जैसी देवियाँ इस शिला में वास करेंगी और उसमें उनकी उपस्थिति का आह्वान किया जाएगा।' इस प्रकार अनजाने में भी महान ऋषि मरीचि ने मानवता की महान सेवा की। आज भी हिन्दू घरों में इस देवशिला की पूजा की जाती है।

अत्रि

ब्रह्माजी को सृष्टि आरम्भ करने का संकेत प्राप्त हुआ। उनके शान्त मन में कम्पन हुआ और अन्य ऋषियों सहित अत्रि की उत्पत्ति हुई। महर्षि अत्रि का उल्लेख ऋग्वेद की ऋचाओं में वैदिक ऋषि के रूप में अग्नि, इन्द्र आदि के साथ प्राप्त होता है। ऋग्वेद के पञ्चम मण्डल की रचना इनके द्वारा बताई जाती है। बृहदारण्यक उपनिषद में प्राण के ऊपर ध्यान की प्रक्रिया में अन्य छह ऋषियों का वर्णन करने के बाद अत्रि के बारे में इस प्रकार कहा गया है, 'जिह्वा अत्रि है, क्योंकि जिह्वा के द्वारा अन्न का भक्षण किया जाता है। अत्रि अत्ति ही है। जो यह जानता है, वह सबका भक्षक बन जाता है और सब कुछ उसका भक्ष्य बन जाता है।'

अत्रि की पत्नी अनसूया (असूया-रहित) थीं। वे देवहूति और ऋषि कर्दम की पुत्रियों में से एक थीं। जब ब्रह्मा ने अत्रि को सृष्टि-विस्तार के लिए कहा, तब वे घोर तपस्या की और ध्यान में लग गए। भारतीय परम्परा में यदि कोई कार्य व्रत, तप, पूजा-अनुष्ठान और उपासना सहित किया जाए तो वह सामान्य स्तर से उच्च स्तर का हो जाता है। महर्षि अत्रि श्रद्धापूर्वक दीर्घकाल तक घोर तपस्या में निमग्न हो गए। उनकी निष्ठा से प्रसन्न होकर त्रिदेव – ब्रह्मा, विष्णु और महेश प्रकट हुए और उनको सम्बोधित किया। नेत्र खोलने पर अत्रि अवर्णनीय प्रेम, आदर और विस्मय सहित उन देवों के चरणों पर गिर पड़े। उन्होंने अत्रि से वर माँगने के लिए कहा। ईश्वर की अपार कृपा की बात सोचकर अत्रि ने तीनों को पुत्र रूप में माँगा। उन्होंने स्मित हास्य से 'एवमस्तु' कहा और अदृश्य हो गए।

इस वरदान के फलस्वरूप ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा,

विष्णु के अंश से दत्तात्रेय और शिव के अंश से दुर्वासा का जन्म हुआ। इस प्रसंग के भिन्न-भिन्न वर्णन प्राप्त होते हैं। एक के अनुसार, सूर्य देवता को उदय न होने के शाप से मुक्त करने के लिए ब्रह्मा, विष्णु और शिव ने अनसूया की सहायता ली, जिससे पृथ्वी पर संकट उत्पन्न न हो। अनसूया इस उद्देश्य में सफल हुईं। देवता लोग उन पर प्रसन्न हुए और उन्हें वर माँगने के लिए कहा। उन्होंने तुरन्त तीनों देवताओं को अपने पुत्र रूप में जन्म लेने के लिए कहा। प्राचीनबर्हि को अत्रि के पुत्र होने का गौरव प्राप्त है।

महान ऋषिगण काल और मृत्यु से अतीत माने जाते हैं। इसलिए महर्षि अत्रि विषयक कथाएँ भारतीय पुराण-इतिहास के अनेक कल्पों में प्राप्त होती हैं। ऋग्वेद में वर्णन आता है कि एकबार दैत्यों ने उनको भस्म करने के उद्देश्य से शतद्वार यन्त्र में डाल दिया। उस समय अत्रि ने अश्विनीकुमारों से प्रार्थना की और उन्होंने इन्हें बन्धन से छुड़ाया। भगवान श्रीराम वनगमन के समय सीता और लक्ष्मण के साथ महर्षि अत्रि और अनसूया से मिलने उनके आश्रम पधारे थे, तब अनसूया ने माँ सीता को उपदेश प्रदान किए।

एकबार राजा निमि ने पुत्र की मृत्यु से दुखी होकर श्राद्ध का अनुष्ठान कराया। महर्षि अत्रि भी वहाँ उपस्थित थे और उन्होंने कर्मकाण्ड की मूल पद्धति से राजा को अवगत कराया। उन्होंने ऋषि पराशर और अन्य ऋषियों को समस्त दैत्यों के संहार हेतु यज्ञ करने के लिए रोका। कौरव और पाण्डवों को युद्ध से विरत करने के लिए वे भी अन्य ऋषियों सहित द्रोणाचार्य के पास गए थे। राजा सोम के द्वारा आयोजित राजसूय यज्ञ में भी अत्रि मुख्य पूजक के पद पर आसीन थे। परशुराम की तपस्याओं में साक्षी रहने वाले महर्षियों में भी वे उपस्थित थे।

शिवपुराण में एक कथा आती है कि पूतसलिला गंगा नदी को पृथ्वी पर लाने के लिए अत्रि और अनसूया ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उन पर प्रसन्न होकर भगवान शिव लिंग के रूप में प्रकट हुए और उनकी आन्तरिक प्रार्थना पर वहीं अत्रीश्वर के रूप में सदा-सर्वदा के लिए विराजमान हो गए।

महाभारत के एक उपाख्यान में वायु देवता अर्जुन से इस प्रकार कहते हैं : देवासुर संग्राम में असुर प्रबल होते जा रहे थे। असुरों ने शरवर्षा कर सूर्य और चन्द्र को प्रच्छन्न कर दिया। देवतागण तितर-बितर होकर अन्धकार में विचरने लगे। उनमें से कुछ देवता महर्षि अत्रि के पास गए और सहायता के लिए प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना से विह्वल होकर अत्रि ने स्वयं को सूर्य और चन्द्र में परिवर्तित कर दिया। सूर्य के प्रखर तेज ने असुरों को दग्ध कर देवताओं की रक्षा की।

आधुनिक समाज इन पौराणिक कथाओं के महत्व को भूल गया है। भगवद्गीता (१६.६) में वर्णन आता है, 'इस लोक में दो प्रकार के जीव हैं, दैवी और आसुरी प्रकृति वाले' – इस सत्य को समझने के लिए हमें केवल अपने आसपास देखना है। ये पौराणिक कथाएँ अपने ढंग से हमें एक स्पष्ट निष्कर्ष की ओर सूचित करती हैं कि प्रकाश की अन्धकार पर और शुभ की अशुभ पर अन्ततः विजय होती है। **(क्रमशः)**

लघुकथा

धन का मूल्य

एक बार एक महात्मा सुदूर देश की यात्रा पर गये। कुछ दिनों बाद उन्हें लगा कि वहाँ के लोग बहुत दुखी हैं। कारण पूछने पर पता चला कि वहाँ का खलीफा बड़ा क्रूर है। वह गरीबों का शोषण कर धन जमा कर रहा है। महात्मा ने खलीफा को सही मार्ग पर लाने का निर्णय लिया। वे उस मार्ग पर गये, जहाँ से प्रतिदिन खलीफा सुबह-शाम गुजरता था। वहाँ एक पेड़ के नीचे बैठकर वे कंकड़-पत्थर जमा करने लगे। सुबह खलीफा वहाँ से गया, तो उधर ध्यान नहीं दिया। शाम को लौटते समय उसने देखा कि कंकड़-पत्थर का ऊँचा ढेर लगा है और ढेर के पास बैठा व्यक्ति उन्हें गिन रहा है। हँसते हुए खलीफा ने महात्मा से कहा – आप कौन हैं और यह क्या कर रहे हैं? महात्मा ने उत्तर दिया, 'मैं भी आपकी तरह एक साधारण व्यक्ति हूँ। जब मैं मरूँगा, तो इन कंकड़-पत्थरों को अपने साथ ले जाऊँगा। इसलिये गिनकर देख रहा हूँ कि कहीं ये बहुत कम तो नहीं हैं।' खलीफा ने आश्चर्य से कहा – इस धरती से सबको खाली हाथ ही जाना पड़ता है, फिर इनका ढेर क्यों लगा रहे हैं? महात्मा ने कहा – जब आप अपनी सम्पत्ति साथ ले जायेंगे, तो मैं भी इसे ले जाऊँगा। ऐसा नहीं होता तो आप गरीबों का धन हड़पकर क्यों जमा करते? खलीफा निरुत्तर हो गया। उसने चुपचाप जाकर गरीबों का धन और अपनी सम्पत्ति का एक बड़ा भाग भी उनमें बाँट दिया। (प्रस्तुति : नीरज शर्मा)

काशी के बनबाबा (२)

स्वामी अप्रमेयानन्द, रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

(प्रस्तुत निबन्ध का मूल बांगला से हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन साधना कुटीर, ओंकारेश्वर के स्वामी उरुक्रमानन्द जी ने किया है।)

सन् १९२६ ई. में किसी एक दिन बनबिहारी महाराज घर का त्याग करके काँथी रामकृष्ण मिशन आश्रम में चले आये। कुछ दिनों बाद ही ब्रह्मचारी बनबिहारी महाराज को काँथी रामकृष्ण मिशन से मेदिनीपुर आश्रम में भेज दिया गया। मेदिनीपुर आश्रम में करीब एक वर्ष रहने के बाद उन्हें बेलूड़ मठ भेज दिया गया था। बेलूड़ मठ में पूजनीय महापुरुष महाराज से ही उनकी मन्त्रदीक्षा हुई। मठ में उनके निवास का वर्णन स्वयं उनके श्रीमुख से ही सुना था – दसवीं कक्षा में पढ़ते-पढ़ते ही अन्तिम परीक्षा न देकर रामकृष्ण संघ में प्रवेश ले लिया। मैं मठ में बड़े आनन्द में ही था। एक तो गाँव का लड़का, गंगा में स्टीमर से बाँसुरी की ध्वनि सुनते ही दौड़कर देखने जाया करता था। उस समय मेरा शरीर स्वस्थ और शक्तिशाली था। मेरा इस तरह दौड़कर स्टीमर देखने का उपक्रम देख पूजनीय महापुरुष महाराज बड़ा आनन्द करते थे। इसी दौरान पूजनीय स्वामी ओंकारानन्दजी महाराज ने मुझे बुलाकर कहा, 'सुनो बनबिहारी, तुम्हें हम लोग देवघर विद्यापीठ भजेंगे। वहाँ जाकर १०वीं कक्षा की परीक्षा पास करके आओ। एक प्रमाण-पत्र रहना अच्छा होता है।'' मैंने दृढ़तापूर्वक विनम्रता से महाराज से कहा, ''महाराज, मेरे पिताजी मुझे पढ़ा सकते थे। परन्तु मैं अब स्कूल में नहीं पढ़ूँगा।

''बेलूड़ मठ में कुछ दिन रहने के बाद मुझे मलेरिया हो गया। मैं बहुत दुबला और दुर्बल हो गया। यह सब देखकर १९२९ ई. के उत्तरार्ध में महापुरुष महाराज ने मुझे काशी सेवाश्रम में भेज दिया। काशी आकर मैं धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगा। फिर कुछ दिनों के बाद ही काशी सेवाश्रम अस्पताल में मैं रोगी-नारायण की सेवा में संलग्न हो गया। रोगी-नारायण की सेवा किस प्रकार करनी चाहिए, यह पूजनीय महाराज गण बहुत ही अच्छे ढंग से समझाकर दिखला देते थे। इसके अतिरिक्त भोजन के लिए भिक्षा करके लाना पड़ता था।'' उन्हें भिक्षा माँगने का प्रशिक्षण किस तरह दिया जाता था, इस विषय में बनबिहारी महाराज विनोद करते हुए कहते थे, 'भिक्षा की झोली लेकर वरिष्ठ साधुओं के साथ भिक्षा माँगने के लिए घर-घर जाना पड़ता था। पहले-पहले उन्होंने एक-दो घरों में भिक्षा कैसे माँगी जाती है, यह दिखला दिया। उसके बाद वे दूर खड़े रहते थे और मुझे भिक्षा के लिए भेज देते थे। शुरू-शुरू में लज्जा के कारण मुँह से बात नहीं निकलती थी, तब भी साहस करके कहता था, 'सेवाश्रम के लिए मुष्टिभिक्षा दे दो, माँ।' इस तरह भिक्षा करके लाने पर वरिष्ठ महाराज कहते थे, 'ऐसे भिक्षा करने से नहीं होगा। भिक्षा लेने के बाद कहना, 'माँ, इस बार भिक्षा कम दी है। यदि ऐसा न करोगे, तो अगली बार भिक्षा की मात्रा और कम हो जाएगी।'

एक दिन की घटना है। महाराज बड़ी हँसी करते हुए कहते थे। भिक्षा करते-करते दोपहर के पहले उन्होंने एक घर के सामने खड़े होकर जब कहा, 'सेवाश्रम की मुष्टिभिक्षा दे दो माँ।' तब एक वयस्का माताजी ने भिक्षा देते हुए कहा, 'अहा ! तुम्हारी माँ ने तुम्हें कैसे छोड़ दिया? धूप से कैसे मुहँ लाल हो गया है। आओ, थोड़ा बताशा खाकर पानी पी लो।' भिक्षा की वे नाना प्रकार की बातें कहा करते थे। ''पाँच-छह किलोमीटर दूर से भिक्षा की वस्तुएँ सिर पर रखकर आश्रम में लानी पड़ती थी। दो बार गर्मी में लू लगकर बहुत कष्ट हुआ था। एक बार लहरतारा से डेढ़ मन सामान लेकर लौट रहा था। कड़ी धूप से सिर चकरा रहा था। किसी तरह आश्रम में आकर ऑफिस के सामने आकर बेहोश होकर गिर पड़ा। कुछ देर के बाद ऐसा लगा कि किसी ने मुँह में कोई तरल पदार्थ दिया है जो अमृततुल्य लगा। थोड़ी देर में मैं पूरी तरह स्वस्थ हो गया। तब मैंने देखा चारों ओर लोग खड़े हुए हैं। कोई हवा कर रहा है और कोई पानी के छीटे दे रहा है।''

सन् १९२९ में पूजनीय महापुरुष काशी में आकर रामकृष्ण अद्वैत आश्रम में रह रहे थे। उस समय काशी में अनेक वृद्ध साधुओं का वास था। आजकल जहाँ दुर्गामण्डप है, वहाँ पर एक विशाल जामुन का पेड़ था। उसी पेड़ के नीचे पूजनीय महापुरुष महाराज बैठे थे और

दोनों आश्रमों के साधु-ब्रह्मचारीगण प्रणाम कर रहे थे। ब्रह्मचारी बनबिहारी महाराज के प्रणाम करते ही महापुरुष महाराज ने स्नेहपूर्वक कहा, ''इस लड़के का स्वास्थ्य पहले कितना अच्छा था। मठ में एक बार मलेरिया होने के बाद एकदम दुबला हो गया था। अब स्वास्थ्य अच्छा ही लग रहा है।'' इसी समय किसी एक शुभ दिन महापुरुषजी ने बनबिहारी महाराज को नैष्ठिक ब्रह्मचर्य दीक्षा में दीक्षित करके ब्रह्मचारी निगमचैतन्य नाम दिया। काशी में भिक्षा करने में सुविधा हेतु गैरिक वस्त्र भी प्रदान किया। उसके बाद उसे आशीर्वाद देते हुए बोले, 'तुम यहीं रहकर नारायण सेवा करो, इससे ही तुम्हारी भक्ति-मुक्ति होगी।''

गुरुवाक्य में दृढ़ विश्वास और श्रद्धा रखकर ब्रह्मचारी बनबिहारी महाराज परवर्ती काल में स्वामी मुक्तानन्द नाम से, तथा उसके बाद 'काशी के बनबाबा' के रूप में अपने जीवन के अन्त समय तक नारायण सेवा अत्यन्त निष्ठापूर्वक करते रहे, जो आज रामकृष्ण संघ में सेवादर्श का एक उज्ज्वल दृष्टान्त बन गया है।

बनबाबा की दैनन्दिन दिनचर्या के विषय में मैंने जो सुना था, वह इस प्रकार है – प्रात:काल वे उठकर गंगा-स्नान के उपरान्त बाबा विश्वनाथ तथा अन्नपूर्णा का दर्शन-स्पर्शन, पूजा-पाठ, जप-ध्यान कर वापस आश्रम पहुँचकर चाय पीते थे। उसके बाद जो अन्यान्य महाराजगण रात्रि में सेवाकार्य करते थे, उन सबको छोड़ना पड़ता था। क्योंकि उस समय रोगी-नारायणों की समस्त सेवा का भार साधु-ब्रह्मचारी के कन्धों पर ही था। दोपहर को सभी पेट भरकर दाल-भात, तरकारी खाते थे एवं रात्रि को भी वही भोजन प्राप्त होता था।

उसके बाद बनबिहारी महाराज कुछ समय विश्राम लेकर आसन को बगल में दबाकर केदार मन्दिर जाते थे एवं पुन: गंगास्नान करके घाट पर स्थित एक बड़े पत्थर पर आसन जमाकर जप-ध्यान करते थे। इस प्रकार की दिनचर्या उन्होंने लगभग ४० वर्षों से भी अधिक काल तक पालन की थी। इस समय की कुछ घटनाएँ उनके जीवन में विशेष महत्व रखती हैं।

१. महापुरुष महाराज से नैष्ठिक ब्रह्मचर्य-दीक्षा प्राप्त करने के कुछ महीनों के पश्चात् की घटना है। नित्य अभ्यास का अनुसरण कर गंगास्नान, विश्वनाथ-अन्नपूर्णा का दर्शन-पूजन करके आश्रम में लौटने पर किसी कारण से पुन: अद्वैत आश्रम जाकर, कुछ समय बाद ही सेवाश्रम में वापस आ गये थे। इसी समय पुराने OPD (Out Patient Department) के सामने एक अल्प उम्र की नवयुवती को देखकर वे खड़े हो गये। महाराज की भाषा में उस महिला की आयु अधिक-से-अधिक १६-१८ वर्ष की रही होगी। ''नारी का इतना सुन्दर रूप हो सकता है, यह मेरी कल्पना के बाहर की वस्तु थी। मैं मुग्ध होकर उसकी ओर देख रहा था। तब उस युवती ने मुझसे कहा, 'क्या देख रहे हो? इसे देखो।' ऐसा कहते हुए अपने सीने के कपड़े को हटा लिया। ओह ! वह कितना बीभत्स दृश्य था ! पूरे सीने पर सड़ा हुआ घाव था, जिसमें कीड़े बिलबिला रहे थे ! मैंने एक सिहरन से भरकर अपनी आँखें बन्द कर लीं तथा पुन: सम्भलकर उस युवती से कहा, 'माँ, तुम यहीं ठहरो। मैं अभी चाबी लाकर तुम्हारी ड्रेसिंग कर देता हूँ।' और क्या कहूँ भाई, दो मिनट बाद ही चाबी लेकर आया, परन्तु कहीं किसी को नहीं देख पाया। लोगों से पूछा कि इस तरह की किसी महिला को तुमने देखा था या नहीं। परन्तु कोई कुछ भी बोल न पाया।'' यह सुनकर हमने महाराज से अनेक प्रश्न किये थे, परन्तु उन्होंने इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा। परवर्ती काल में उनकी नर-नारी सभी की ऐकान्तिक सेवा-परायणता देखकर हमें ऐसा लगा कि स्वयं महामाया ने उन्हें दर्शन देकर इस अनित्य जगत की नश्वरता दिखला दी। ❍❍❍

स्वामी विवेकानन्द अपने परिव्राजक जीवन में एकबार अलमोड़ा में भूख और थकान से मृतप्राय हो गए थे। एक मुसलमान फकीर ने स्वामीजी की यह अवस्था देखकर उन्हें खीरा खाने को दिया। वही खाकर स्वामीजी थोड़ा स्वस्थ हुए। अमेरिका से वापस आने के बाद अलमोड़ा में एक सभा में स्वामीजी ने देखा कि वह फकीर भी श्रोताओं के बीच खड़ा है। उन्होंने तुरन्त उस फकीर को बुलाया और सभी को कहा, 'इसी फकीर ने एक बार मेरी प्राण रक्षा की थी।' फकीर स्वामीजी को पहचान न सका। स्वामीजी ने थोड़ा धन देकर उसका आभार व्यक्त किया।

निराला पर श्रीरामकृष्ण का प्रभाव

अवधेश प्रधान

प्रा. हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

भक्ति की कविता – तुलसी-सूर, कबीर-जायसी, मीरा-रसखान की कविता समस्त हिन्दी साहित्य का सर्वोच्च स्वर्ण शिखर है। उसके बाद श्रेष्ठता-क्रम में यदि किसी की गणना हो सकती है, तो आधुनिक हिन्दी की छायावादी कविता की - प्रसाद-निराला, पंत-महादेवी की कविता की। निराला न केवल छायावादी कविता के, वरन् समस्त आधुनिक हिन्दी कविता के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनका व्यक्तित्व और कवित्त्व दोनों अद्वितीय है। यद्यपि समूची छायावादी कविता पर रवीन्द्रनाथ का गहरा प्रभाव है लेकिन निराला रवीन्द्रनाथ से अधिक रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से प्रभावित हैं। यह तथ्य तो सर्वविदित है कि श्रीरामकृष्ण के प्रत्यक्ष शिष्य एवं स्वामी विवेकानन्द के गुरुभाई स्वामी प्रेमानन्द और स्वामी सारदानन्द जी का स्नेह और आशीर्वाद उनको प्राप्त था। बेलूड़ मठ से भी उनका सम्पर्क था और 'उद्‌बोधन' कार्यालय में रहते हुए उन्होंने 'समन्वय' के संपादन में भी सहयोग किया था। अद्वैत आश्रम, मायावती के तत्कालीन अध्यक्ष स्वामी माधवानन्द जी ने हिन्दी में एक पत्रिका निकालने के विचार से हिन्दी के युग-निर्माता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से एक संपादक की इच्छा प्रकट की। द्विवेदीजी ने उनसे निराला की सिफारिश की। स्वामी माधवानन्द जी ने अंग्रेजी में एक पत्र निराला को लिखकर उनसे योग्यता का प्रमाण पत्र माँगा, तो निराला ने उसका उत्तर बंगला में लिखा। निराला के शब्दों में, "बंगाल में रहकर परमहंस श्रीरामकृष्ण देव तथा स्वामी विवेकानन्द जी के साहित्य से मैं परिचय प्राप्त कर चुका था, दो-एक बार रामकृष्ण मिशन, बेलूड़, दरिद्रनारायणों की सेवा के लिए भी जा चुका था, परमहंस देव जी के शिष्य पूज्यपाद स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज को महिषादल में अपना तुलसीकृत रामायण का सस्वर पाठ सुनाकर उनका अनुपम स्नेह तथा आशीर्वाद प्राप्त कर चुका था, स्वामी माधवानन्द जी को पत्रोत्तर में अपनी इसी योग्यता के हृष्ट-पुष्ट प्रमाण दिए।" (चतुरी चमार, पृ० ५२) उस समय कलकत्ता में ही 'समन्वय' के लिए कोई व्यक्ति मिल गए। लेकिन काम नहीं बना। आठ महीने के भीतर दो संपादक बदलने पड़े। तब 'समन्वय' के मैनेजर स्वामी आत्मबोधानन्द जी ने निराला को बुलाया। वहाँ हिन्दी का एक ऐसा संपादक चाहिए था, जो बंगला जानता हो। निराला ने यह आवश्यकता पूरी कर दी। वे १९२२ में उद्बोधन कार्यालय, बागबाजार में जाकर रहने लगे। "यहीं पहले-पहल स्वामी सारदानन्द जी महाराज के दर्शन किए। यह १९२२ की बात है।" उस प्रसंग में रामकृष्ण संघ के अध्यक्ष स्वामी वीरेश्वरानन्द का एक पत्र उल्लेखनीय है, जो उन्होंने निराला की मृत्यु के बाद नागपुर मठ के अध्यक्ष को लिखा था, "निराला संघ में प्रवेश लेने आया था और प्रारम्भ में उद्बोधन या शंकर घोष लेन में ब्रह्मचारी रहा। बाद में जब उसे लगा कि त्याग का मार्ग उसे रास नहीं आयेगा तो, उसने यह विचार छोड़ दिया। परन्तु वह हमलोगों के साथ ही भोजन तथा निवास करता रहा। उसी समय उसने 'समन्वय' के लिये स्वामीजी की कुछ पुस्तकों तथा 'वचनामृत' का अनुवाद किया था। उन दिनों हमलोग किराये पर (बालकृष्ण) प्रेस की दूसरी मंजिल पर रहते थे। जब मैं स्थानान्तरित होकर मायावती से कलकत्ता शाखा में आया। उसके पहले ही सूर्यकान्त वहाँ आ चुका था। ("स्वामी वीरेश्वरानन्द : एक दिव्य जीवन" के हिन्दी संस्करण के लिए 'संपादक के दो शब्द' में स्वामी विदेहात्मानन्द' द्वारा उद्धृत।)

स्वामी सारदानन्द जी ने उनके गले में उंगली से बीजमन्त्र लिखकर उन्हें दीक्षा दी थी। स्वामीजी ने कहा, "हमलोग तो श्रीरामकृष्ण को ही ईश्वर मानते हैं।" निराला ने कहा, "ऐसा तो मैं भी मानता हूँ।" इसके बाद क्या हुआ, निराला के ही शब्दों में पढ़िए, "वह भावस्थ गुरुत्व से मेरे सामने आए। मुझे ऐसा जान पड़ा, एक ठंडी छाँह में डूबता जा रहा हूँ। फिर मेरे गले में अपनी उंगली से एक बीज मन्त्र लिखने लगे। मैंने मन को गले के पास ले जाकर क्या लिख रहे हैं पढ़ने की बड़ी चेष्टा की, पर कुछ मेरी समझ में न आया। (वही, पृ ५७) इसके बाद बहुत-सी अनुभूतियाँ हुईं, सपने आए। एक दिन सपने में देखा, "ज्योतिर्मय समुद्र है, श्यामा की बाँह पर मेरा मस्तक, मैं लहरों में हिल रहा हूँ।" (वही, पृ० ५८) एक दिन वह मन्त्र भी समझ में आ गया, "वह मन्त्र भी तीन साल हुए, आग-सा चमकता हुआ कुछ दिनों तक सामने आया, उसे मैंने पढ़ लिया है।" (वही, पृ० ५८) स्वामी सारदानन्द जी महाराज के प्रति उनके मन में कितनी ऊँची धारणा थी, इस का एक नमूना इस वाक्य में है, "इन महादार्शनिक, महाकवि, स्वयंभू, मनस्वी, चिर-ब्रह्मचारी, संन्यासी, महापंडित, सर्वस्व त्यागी, साक्षात् महावीर के समक्ष देवत्व, इन्द्र और

मुक्ति भी तुच्छ है।'' (वही, पृ० ५५)

'समन्वय' के मई-जून १९२२ के अंक में उन्होंने श्रीरामकृष्ण पर पहला लेख लिखा, ''भारत में श्रीराम-कृष्णावतार।'' इस लेख पर स्वामी सारदानन्द जी के 'श्रीरामकृष्ण- लीलाप्रसंग' की शैली और तर्कयोजना का प्रभाव है। शुरू में मनुष्य की श्रेष्ठता, ब्रह्म या पूर्ण पद पर प्रतिष्ठित होना, मनुष्य का धर्म, सृष्टि में परस्पर विरोधी तत्त्वों का सामंजस्य, भोग और त्याग तथा धर्म और अधर्म का द्वन्द्व, धर्म की ग्लानि और अधर्म के अभ्युत्थान के बाद भगवान का अवतार ग्रहण, भारत में पश्चिमी भोगवादी सभ्यता के प्रसार की पृष्ठभूमि आदि की विस्तृत चर्चा करने के बाद अंतिम परिच्छेद में श्रीरामकृष्णावतार की महिमा को इन शब्दों में प्रस्तुत की, ''इस बार अत्याचार पीड़ित और भोगान्ध मनुष्यों को शान्ति का पता बताने के लिए भगवान श्रीरामकृष्ण देव अवतीर्ण हुए। इस बार भी भारत शान्ति स्थापना का केन्द्र बना। संसार में आज जो आध्यात्मिक प्रवाह बह रहा है, उसकी उत्पत्ति भगवान श्रीरामकृष्ण-महान आध्यात्मिक तत्त्व स्वरूप से हुई। आज विश्व समाज में भ्रातृबंधन की जो ध्वनि गूँज रही है, वह सबसे पहले भगवान श्रीरामकृष्ण जी के मुख से निकली थी। विश्वविजयी वेदान्त केसरी स्वामी विवेकानन्द की वीरवाणी को मन्त्रमुग्धवत् संसार सुन रहा है, पर उनकी दिव्य शिक्षा भगवान श्रीरामकृष्ण देव के पदप्रान्त पर समाप्त हुई थी। आज भारत में एकता-लता पर जो फूल खिल रहा है, उसके निपुण माली हैं, भगवान श्रीरामकृष्ण'' (निराला रचनावली, भाग ६, ३३-३४)।

'जातीय जीवन और श्रीरामकृष्ण' शीर्षक उनका दूसरा लेख मार्च-अप्रैल १९२३ के 'समन्वय' में छपा था। इसमें यद्यपि श्रीरामकृष्ण की कुछ अधिक चर्चा है, तो भी भूमिका में यानी जातीय जीवन की चर्चा में चार पृष्ठ चले गये हैं, रामकृष्ण पर मुश्किल से ढाई पृष्ठ। भूमिका भाग में बताया है कि भारत की जातीय विशिष्टता मोक्षाभिमुख है, भोगोन्मुख नहीं और उसके राष्ट्रीय जीवन का नेतृत्व राजा या संपत्तिशाली लोग नहीं, बल्कि समाधिप्रतिष्ठ सर्वत्यागी महापुरुष करते हैं, ''हम जब भी देखते हैं, भारत के मुरझाये हुए जातीय जीवन को पुनर्जीवित करने के लिए अवतीर्ण श्रीकृष्ण, बुद्ध, शंकर, रामानुज, श्री चैतन्य आदि महान आत्माओं को देखते हैं। हम सदा ऐसे ही महामनीषियों को भारत के नेतृत्व पद पर प्रतिष्ठित पाते हैं।'' (वही, पृ० ४१) बुद्ध, शंकर, रामानुज आदि ने जाति का हित तो किया, पर इनके धर्म परस्पर-विरोधी थे, शंकर का मस्तिष्क महान था, पर हृदय दुर्बल, रामानुज ने हृदय को महत्त्व दिया, हृदय के धर्म ने मस्तिष्क के अभाव के कारण जातीय पतन को बढ़ाया, ऊपर से छुआछूत की आचारपरक संकीर्णता ने अपना प्रभाव विस्तार किया, तमोगुण पहले ही बहुत था, अब अंग्रेज के आने के बाद रजोगुण का भी जोर बढ़ा, अंग्रेज की शिक्षानीति के प्रभाव से भारत में एक ओर पाश्चात्य आचार-विचार फैलने लगे, दूसरी ओर उसकी प्रतिक्रिया में शास्त्रीय रूढ़िवाद की जकड़बंदी और कस गई, ''इस प्रकार हर एक विभाग में बड़े-बूढ़ों की अज्ञता और नए सभ्यों की सभ्यता आपस में टक्करें लेने लगी, जो सुधार चले वे भी सकारात्मक न होकर संहारमूलक थे। कोई मूर्तिपूजन का खंडन करके जाति में जीवनी शक्ति लाने का दम्भ भरता तो कोई पंडितों द्वारा समाजच्युत किये जाने पर, स्वयं एक नए समाज की सृष्टि करके, उसी के द्वारा जाति को पुनर्जीवित करने का संकल्प करता। दूसरी ओर पादरी अपना राग अलग अलाप रहे थे। पतित जनों को अथवा जिसे घात में पाया उसे ही बल या छल से मूड़ लेते थे।'' (वही, पृ १० ४४) इसी विषम संकट से भारत को उबारने के लिए श्रीरामकृष्ण का अवतार हुआ, ''इस बार जातीय जीवन को उद्‌बुद्ध करने के लिए भगवान श्रीरामकृष्ण अवतीर्ण हुए।'' (वही, पृ० ४४) वे तो स्वयं सिद्ध थे, उनकी सब साधनाएं लोकशिक्षण के लिए थीं। तन्त्र-साधना, दास्य भाव, मधुर भाव आदि की भक्तिसाधना, वेदान्त, इस्लाम और ईसाइयत की साधनाओं से गुजर कर उन्होंने इस सत्य की खोज की कि वे सभी मार्ग परमात्मा से ही निकले हैं और उसी एक परमात्मा की ओर ले जाते हैं। ''वही हिन्दुओं का वेदान्त वेद्य जातीय जीवन है।'' सर्वधर्म समन्वय के जिस भाव का प्रचार स्वामी विवेकानन्द ने समूचे विश्व में किया, उसकी शिक्षा उन्हें श्रीरामकृष्ण से ही मिली थी। स्वामीजी जी की शिकागो विजय, पश्चिम में उनकी धर्मप्रचार यात्राएँ सब श्रीरामकृष्ण की ही आध्यात्मिक योजना का परिणाम हैं। ''श्रीरामकृष्ण की अध्यात्म शक्ति ने भारत को प्रबुद्ध करने के लिए दूसरी स्वाधीन जाति से भी उसका सम्बन्ध जोड़ा और संसार भर के ज्ञान पिपासुओं को शान्ति दी; संसार की विचार परम्पराओं में घोर हलचल मचा दी।'' (वही पृ० ४६)

श्रीरामकृष्ण में शंकर के महान मस्तिष्क और बुद्ध के

विशाल हृदय दोनों का अन्तर्भाव हुआ था। उनके संदेश की एक बहुत बड़ी विशिष्टता है उसकी अविरोधिता, ''पूर्वकालिक आचार्यों ने पांडित्य की प्रखर ज्योति से एक धर्म का नाश और दूसरे का अभ्युत्थान साधन किया था, परन्तु आधुनिक आचार्य श्रीरामकृष्ण ने श्रद्धामय सरल मुख की बालसुलभ वचनावली द्वारा उच्च तत्त्वों का विकास और सर्वधर्मों का समन्वय किया। मनुष्यों में ही नहीं, कंकड़-पत्थरों में भी चिन्मयी महाशक्ति का स्वरूप प्रत्यक्ष देखते हुए उन्होंने कहा – मूर्तिपूजन से लेकर सर्वोच्च वेदांत के सिद्धान्त तक सत्य है, हर एक से श्रद्धापूर्वक मिलो, सबमें वही विभु विराजमान है, किसी से विरोध करोगे तो वह परमात्मा से ही विरोध करना होगा, उस विरोध का धक्का तुम्हें जरूर सहना पड़ेगा।'' (वही पृ० ४६) इसी अविरोधी धर्म का प्रभाव था कि वे एक ही जाति की विभूति न रहकर ''सब संप्रदायों के अंतरंग हो गये थे।''

निराला जी यह भी कहना चाहते हैं कि श्रीरामकृष्ण लोकगुरु तो हैं, लेकिन स्वरूपत: वे स्वयं सत्य हैं, ''रामकृष्ण वे हैं, जो प्रत्येक साधन मार्ग से चलकर सत्यस्वरूप में लीन हो रहे हैं – सत्य के बिना जिनका दूसरा अस्तित्व कुछ भी नहीं। तेजोमय भूमानन्द से उतरकर मन और वाणी के राज्य में जो रामकृष्ण हैं, उनके सत्य के विमल प्रकाश को छूकर निकलते हुए महोच्च आध्यात्मिक-तत्त्वा-समूह जनसमाज में लोकगुरु के आसन पर प्रतिष्ठित हैं।'' (वही, पृ० ४६) श्रीरामकृष्ण पर विचार करते हुए एक बार उन्हें ऐसा भी लगता है कि उनका 'आध्यात्मिक परिचय' देना असम्भव है। (वही पृ० ६०) इसी प्रकार एक जगह और लिखा है, ''ये कितने बड़े थे या हैं, इसकी चर्चा नहीं करूँगा, करने पर भी नहीं कर सकूँगा।'' (वही, पृ० १४२)

५ अप्रैल १९२४ के 'मतवाला' में उनका 'श्रीरामकृष्ण देव' शीर्षक लेख छपा। इसके भी आरम्भ में अवतार तत्त्व की विस्तृत चर्चा करने के बाद श्रीरामकृष्ण का संक्षिप्त उल्लेख किया। जब भारत में धर्मों, संप्रदायों, पंथों की भरमार हो रही थी और पश्चिमी जगत भोग की अतिशयता से अतृप्ति और अशान्ति का अनुभव कर रहा था, उसी समय धर्म की भ्रान्ति और मानव हृदय की अशान्ति को दूर करने के लिए परम शान्तिमय सच्चे धर्म का संदेश लेकर श्रीरामकृष्ण आए, ''इस बार मूर्तिमान धर्म, पवित्रता से भी पवित्र, संसार के इतिहास में अद्वितीय महापुरुष भगवान श्रीरामकृष्ण देव का आविर्भाव हुआ। आज तक जितने अतिमानव चरित्रों का इतिहास मिलता है और भारत में ही उनकी अधिकता संभव है, इतनी पूर्णता उनमें से किसी में नहीं पाई जाती। जड़वाद की अज्ञान परम्परा जितनी ही बढ़ती जाती है, इधर अध्यात्मवाद की पूर्णता का चित्र भी उतना ही उज्ज्वल नजर आता है।'' (वही, पृ० ६०) निरालाजी के परमहंस विषयक हर लेख की लम्बी भूमिका श्रीरामकृष्ण के आविर्भाव को ऐतिहासिक आवश्यकता के रूप में रेखांकित करना चाहती है। एक जगह लिखा है, ''संसार को ऐसे ही एक आदर्श महापुरुष की आवश्यकता थी जो संसार को धर्म के एक ही बन्धन से बाँधता।'' (वही, पृ० ६०) रामकृष्ण में संसार की यह आवश्यकता पूरी हुई।

अप्रैल-मई १९२९ के 'समन्वय' में उनका ''युगावतार श्री रामकृष्ण'' शीर्षक लम्बा लेख छपा, जिसमें श्रीरामकृष्ण की भरी-पूरी जीवनी अंकित है। आरम्भ में निरालाजी ने १९वीं सदी के भारतीय नवजागरण के अन्य नायकों से श्रीरामकृष्ण की विशिष्टता रेखांकित की। अन्य समाज सुधारकों का कार्य बौद्धिक था, ''परन्तु आर्य समाज या ब्राह्म समाज के द्वारा हिन्दुओं के सनातन सत्य की विशेष कोई मीमांसा नहीं हुई। किसी के संदिग्ध मन को तृप्त कर देने वाला उत्तर कहीं से नहीं निकला। उन स्थलों में अपनी ही मौलिकता, अपने ही सुधार की वीणा बजती है। बजती आई हुई रागिनियों के भूले हुए स्वरों से पहचान नहीं कराई गई। इसका कारण यह था कि वहाँ कोई ऐसा प्रतिभाशाली यथार्थ भारतीय नहीं था, जिसने ईश्वर-साक्षात्कार करने के पश्चात समाज स्थापना की ओर ध्यान दिया होता। उनका कार्य बौद्धिक था।'' (वही, पृ० ९२) श्रीरामकृष्ण ने कोई नया पंथ, नया समाज, नया सम्प्रदाय नहीं चलाया वरन् उन्होंने धर्म के सनातन सत्य की स्वयं अनुभूत सत्य की ऐसी उदार व्याख्या प्रस्तुत की जो सभी साम्प्रदायिक विवादों का अन्त करने वाली थी। इसीलिए वे केशवचन्द्र सेन, स्वामी दयानन्द, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, गिरीशचन्द्र घोष सभी पर अपना प्रभाव छोड़ सके। समस्त विश्व में श्रीरामकृष्ण के आध्यात्मिक व्यक्तित्व की श्रेष्ठता और अद्वितीयता पर जोर देते हुए निरालाजी ने लिखा, ''आध्यात्मिक साहित्य के एक पाठक की हैसियत से मैं यह बात जोर देकर कह सकता हूँ कि विश्व के आध्यात्मिक साहित्य में कोई मनुष्य इतना अद्भुत, महान, तपस्वी, जितेन्द्रिय तथा अपार भावराशिसम्पन्न नहीं मिलता, जिसकी तुलना श्रीरामकृष्ण के

साथ की जा सके; न इतना बड़ा उत्तरदायित्व लेकर ही कोई आया है। श्रीकृष्ण का गीता-समन्वय फिर भी निरस्त्र नहीं रह सका, परन्तु श्रीरामकृष्ण का धर्म-समन्वय निरस्त्र होकर भी अद्भुत प्रकार से विजयी है।'' (वही, पृ० ९७) श्रीरामकृष्ण के अवतारत्व पर पहले निराला जी हँसते थे, लेकिन बाद में क्रमशः उन्हें इसका पक्का विश्वास हो गया, ''उन्होंने स्वयं जो स्वामी विवेकानन्द जी से कहा था कि जो राम हैं, जो कृष्ण हैं, वही रामकृष्ण हैं। पहले मैं यह अंश पढ़कर हँसता था, पर अब मुझे इस पर दृढ़ विश्वास हो गया है, जैसे किसी दिव्य विषय पर चिन्तन करते हुए बिना रामकृष्ण के जाने का मार्ग ही न हो, जैसे तमाम दिव्य प्रकृति में परिव्याप्त हो गए हों।'' (वही, पृ० ९८)

उन्होंने मार्च १९३२ की 'माधुरी' में प्रकाशित ''श्री देव रामकृष्ण परमहंस'' शीर्षक लेख इसी भाव से ओतप्रोत होकर शुरू किया है और स्वामी विवेकानन्द प्रणीत ''स्थापकाय च धर्मस्य'' आदि को उद्धृत करते हुए श्रीरामकृष्ण की अवतारवरिष्ठता के पक्ष में लिखा है, ''धर्मशास्त्र का मैंने जहाँ तक अध्ययन किया है, संतों के, अवतार पुरुषों के इतिहास में मेरा जहाँ तक परिचय है, मैंने भारत के साहित्य में इतना बड़ा अवतार नहीं पाया। अवतारश्रेष्ठ शंकर की तुलना ज्ञान, चरित्र तथा शास्त्रानुशीलन में वाग्मिप्रवर महाज्ञान मूर्तिमान प्रतिभा स्वामी विवेकानन्द जी से ही होती है, श्रीरामकृष्ण अतुल हैं। श्रीरामकृष्ण देव के गुण स्वामी विवेकानन्द जी के साहित्य में अल्पांश प्रकट हैं। ऐसा स्वामीजी ने स्वयं कहा है।'' (वही, पृ० १२५) इस लेख में निराला जी से तथ्य सम्बन्धी एक भूल भी हो गई है, वह यह कि उन्होंने इसमें श्रीरामकृष्ण के सत्रह शिष्यों की जो सूची दी है, उसमें स्वामी अद्वैतानन्द का नाम छोड़ दिया है और स्वामी निर्मलानन्द और स्वामी सच्चिदानन्द का नाम जोड़ दिया है।

निरालाजी इस तथ्य से परिचित थे कि ''श्रीरामकृष्ण के भावों को संसार के साहित्य क्षेत्र में भी विशेष स्थान मिल गया है।'' (वही, पृ० ४७) श्रीरामकृष्ण के प्रभाव से बंगला साहित्य में जो युगांतर आया, उससे वे विशेष रूप से परिचित थे। इस दृष्टि से उन्होंने नाट्यसम्राट गिरीशचन्द्र घोष को सर्वोच्च स्थान दिया है। मेरा विचार है कि गिरीशचन्द्र घोष के बाद इस क्रम में भारतीय साहित्य में किसी का नाम सबसे पहले आएगा तो निराला का, कम-से-कम हिन्दी में तो वे सबसे बड़े रचनाकार हैं ही जो श्रीरामकृष्ण भावधारा से इस तरह और इतना प्रभावित हैं। 'समन्वय', 'मतवाला' और 'माधुरी' में उपर्युक्त लेख लिखने के अलावा उन्होंने बंगला में 'रामकृष्णकथामृत' का 'रामकृष्ण-वचनामृत' नाम से हिन्दी में अनुवाद किया। ऐसे कवि की कविता ही उस प्रभाव से अछूती रह जाय, यह असम्भव है। 'अनामिका' में संकलित उनकी कविता 'सेवा प्रारम्भ' के आरम्भ में श्रीरामकृष्ण की साधना से जो 'जन-जन में भारत की नवाराधना' जागी उसके व्यापक और गम्भीर प्रभाव का अद्भुत वर्णन किया है। एक ओर विज्ञान का रथ अपने घर्घरनाद से विश्वविजय की घोषणा करता हुआ बढ़ रहा है, बड़े लौहयन्त्र मृत्यु के भीमकाय यन्त्र के समान आँतों को चूस रहे हैं, पृथ्वी-जल-आकाश सब उसकी पहुँच में हैं, युद्ध के अस्त्रो में वृद्धि हो रही है, चारों ओर मृत्यु का कोलाहल मचा है, दर्प के विष से मनुष्य जर्जर है, चारो ओर स्वार्थपूर्ण स्वर गूँज रहे हैं, इस-उस दल का विरोध बढ़ रहा है, एक ओर जीवन का नाश करने को मैक्सिम गन की खोज और दूसरी ओर नोबल पुरस्कार, राजनीति नागिन की तरह डस रही है, सभ्यता कितनी अभागिनी है, वहीं दूसरी ओर श्रीरामकृष्ण के युवा शिष्यों के माध्यम से ज्ञान, योग, भक्ति और कर्म आदि की आध्यात्मिक धाराएँ पाषाण की गहन काराएँ तोड़कर समस्त भूमण्डल के आर-पार बह रही हैं, उन्हीं के साथ गृहस्थ जन भी आ मिलते हैं, एक ओर मशीनों का शोर है, दूसरी ओर आत्मा की महान शक्ति मौन निःशब्द अपना कार्य कर रही है। 'अणिमा' में संकलित उनकी 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज' शीर्षक कविता में प्रेमानन्द जी महाराज अपनी महिषादल यात्रा में जन साधारण के बीच ऊँच-नीच, छुआ-छूत के परे मानव मात्र के बीच आत्मीय सम्बन्ध का, विशेष रूप से अपमानित-लांछित लोगों के प्रति श्रीरामकृष्ण की अथाह करुणा का आख्यान करते हैं। निराला ने 'नये पत्ते' में संकलित ''युगावतार श्रीरामकृष्ण देव के प्रति'' शीर्षक कविता में श्रीरामकृष्ण के दिव्य आविर्भाव की अभ्यर्थना रहस्य शैली में की है। राम, सीता, महावीर, ईसा, मुहम्मद आदि विभिन्न भावमूर्तियाँ जिस प्रकार श्रीरामकृष्ण की साधना के विभिन्न चरणों में उनके समक्ष प्रकट हुईं और फिर उन्हीं के भीतर समाविष्ट हो गईं, उसी प्रकार निराला की सुप्रसिद्ध महाकाव्यात्मक कविता ''राम की शक्तिपूजा'' में महाशक्ति राम की पूजा से प्रसन्न होकर प्रकट होती हैं और उनको विजय का आशीर्वाद देती हुई फिर उन्हीं के मुख में समा जाती हैं। श्रीरामकृष्ण

समाधि की सबसे ऊँची चोटियों से उतर कर जगदम्बा के सरल बालक की भाँति आजीवन माँ-माँ की करुण पुकार करते रहे । निराला ने अपने काव्य के आरम्भ काल से लेकर अन्तिम चरण तक मातृवन्दना के एक से एक कोमल और ओजस्वी गीत लिखे, जो समूचे हिन्दी साहित्य के इतिहास में अतुलनीय हैं । ○○○

स्वामी त्रिगुणातीतानन्द और उद्बोधन पत्रिका

जयन्ती विशेष

स्वामी त्रिगुणातीत एक बंगाली मासिक पत्रिका शुरू करने के बारे में सोच रहे थे । उन्होंने अमेरिका में स्वामी विवेकानन्द को पत्र द्वारा इसके बारे में सूचित किया । स्वामीजी यह सुनकर बहुत आनन्दित हुए और उन्होंने अपनी ओजस्वी वाणी में लिखा, 'पत्रिका को शुरू करो... तुम लोगों के मुख और हाथों पर वाग्देवी का अधिष्ठान होगा, हृदय में अनन्तशक्तिशाली श्रीभगवान अधिष्ठित होंगे, तुम लोग ऐसे कार्य करोगे, जिन्हें देखकर संसार आश्चर्यचकित हो जाएगा ।'

स्वामीजी का प्रेरणादायी पत्र प्राप्त कर स्वामी त्रिगुणातीत महाराज पत्रिका के कार्य में लग गए । इसके लिए उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा । सबसे बड़ी समस्या थी पैसों की । पत्रिका के लिए प्रेस को किराये से लेना, कर्मचारियों का वेतन, प्रकाशन-स्थान का किराया इत्यादि के लिए दान की आवश्यकता थी । उस समय मठ की आर्थिक स्थिति बहुत ही खराब थी किन्तु स्वामी विवेकानन्द और उनके गुरुभाइयों की इच्छा थी कि उनके गुरु श्रीरामकृष्ण देव के सेवा और त्याग के उपदेशों को घर-घर तक पहुँचाया जाय ।

स्वामी विवेकानन्द और उनके शिष्यों की सहायता से एक प्रेस खरीदी गई । कोलकाता में स्वामी त्रिगुणातीत के मित्र डा. शशिभूषण घोष के यहाँ बंगाली मासिक पत्रिका का शुभारम्भ हुआ, जिसका नाम 'उद्बोधन' रखा गया । स्वामी त्रिगुणातीत भूख-प्यास, विश्राम इत्यादि को भूलकर दिन-रात निष्ठापूर्वक इस सेवाकार्य में लग गए, मानो वह पत्रिका ही उनका इष्ट हो । उनकी कार्य करने की क्षमता अद्भुत थी । वे केवल आधा घण्टे का विश्राम लेते थे और साढ़े तेईस घण्टे निरन्तर काम करते थे । पत्रिका के लिए लेख-संग्रह, प्रूफ-संशोधन, सम्पादन, पत्रिका का प्रचार और उसके लिए सदस्य ढूँढ़ना इत्यादि सभी कार्य उन्हें अकेले ही करने पड़ते थे ।

'उद्बोधन' का प्रथम अंक १४ जनवरी, १८९९ को प्रकाशित हुआ । उस समय स्वामी विवेकानन्द बेलूड़ मठ में थे । जब उनके शिष्य शरद्चन्द्र चक्रवर्ती ने स्वामीजी को 'उद्बोधन' का प्रथम अंक दिखाया और स्वामी त्रिगुणातीत जी के अथक परिश्रम और निष्ठा की प्रशंसा की, तब स्वामीजी ने कहा, 'तुम्हें क्या लगता है कि श्रीरामकृष्ण के इन संन्यासी शिष्यों का जन्म केवल पेड़ के नीचे धूनी लगाने के लिए हुआ है !...उनसे सीखो कि किस तरह कार्य करना चाहिए । त्रिगुणातीत को ही देख लो, किस तरह मेरे आदेश पर वह अपनी ध्यान-साधना और सब सुविधाएँ छोड़कर काम में लग गया है । देखते नहीं, उसकी कार्य-निष्ठा के पीछे उसका मेरे प्रति कितना प्रेम है ।' सचमुच में 'उद्बोधन' पत्रिका शुरू करने में और उसे एक सुदृढ़ आधारशिला पर स्थापित करने में स्वामी त्रिगुणातीत जी ने अथक परिश्रम किये थे । वर्तमान में 'उद्बोधन' रामकृष्ण संघ की प्रसिद्ध बंगाली मासिक पत्रिका है और इसकी प्रसार संख्या लगभग ७५,००० है । ○○○

लाटू महाराज का अद्भुत जीवन

जयन्ती विशेष

स्वामी अद्भुतानन्द श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे । भक्त लोगों के बीच वे लाटू महाराज के नाम से परिचित थे । श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के बाद वे भिक्षा-निर्वाह कर अपना पूरा समय जप-ध्यान में बिताते थे । एक दिन वे एक भक्त के यहाँ भिक्षा माँगने गए । न जाने क्यों उस दिन लाटू महाराज को उस भक्त से भिक्षा ग्रहण करने में संकोच हो रहा था । उनके इस आचरण को देखकर पास में ही खड़े एक अन्य भक्त को आश्चर्य हुआ ।

भक्त ने पूछा, 'महाराज, भिक्षा माँगने आकर आपने रुपया वापस क्यों कर दिया?

लाटू महाराज – अरे ! अभी वह नशे की झोंक में है । ऐसी अवस्था में रहने पर किसी का दान ग्रहण नहीं करना चाहिए ।

भक्त – क्यों, महाराज?

लाटू महाराज – अरे ! अभी तो नशे की झोंक में दे दिया, किन्तु नशा उतरने पर कहेगा कि मुझे ठगकर पैसे ले गया । जहाँ ऐसी बात उठने की सम्भावना हो, वहाँ किसी भी प्रकार का दान लेना उचित नहीं ।

भक्त – महाराज ! आप इतना सोच-विचार करने के बाद ही दूसरों से दान लेते हैं?

लाटू महाराज – जानते हो, जो श्रद्धा के साथ दान करता है, मैं उसी का दान ले सकता हूँ । लापरवाही का दान संन्यासी को स्वीकार नहीं करना चाहिए । अश्रद्धा का दान जो लेता है और जो देता है, दोनों का ही अकल्याण होता है ।

लाटू महाराज प्रतिदिन उतनी ही भिक्षा लेते थे, जितनी उनको आवश्यकता होती थी । भिक्षा में प्राप्त पैसों से मुरमुरे या चने खरीद कर सारे दिन की भूख मिटा लेते थे । गिरीश घोष उनके बारे में कहते थे, 'गीता का साधू देखना हो तो लाटू महाराज को देखो ।' ○○○

समाचार और सूचनाएँ

चेन्नई और तमिलनाडू के अन्य क्षेत्रों में बाढ़ राहत कार्य

२०१५ नवम्बर-दिसम्बर में तमिलनाडू और विशेषकर चैन्नई में आई भयंकर बाढ़ के कारण स्थानीय लोगों को अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । इसमें कई लोगों की मृत्यु हो गई और बिजली, पानी, खाद्य एवं आवास जैसी आवश्यक वस्तुओं के अभाव में अनेक लोगों का जीवन संकट में पड़ गया । रामकृष्ण मठ, चेन्नई और तमिलनाडू के अन्य आश्रमों ने बाढ़-पीड़ितों के लिए अविलम्ब प्राथमिक राहत कार्य आरम्भ कर दिया, जिसका विवरण निम्न प्रकार है ।

(१) **रामकृष्ण मठ, चैन्नई** ने १४ से १८ नवम्बर के बीच १५,००० कि.ग्रा. चावल, ५०० कि.ग्रा. दाल, ३० कि.ग्रा. दूध-पावडर, १००० साड़ी, १०७३ लुंगी, ५०० तौलिया, १५०० चटाई, १५६५ कम्बल और १०० बर्तन-सेट १६९३ परिवारों को बाँटे । १७ नवम्बर को ५००० बाढ़-ग्रस्त परिवारों को पकाया हुआ भोजन दिया गया तथा निकटवर्ती स्थानों में १०१० बाढ़-ग्रस्त लोगों को चिकित्सा सेवा प्रदान की गई ।

१ दिसम्बर, २०१५ से पट्टीनपक्कम, नदुपक्कम, रामकृष्णपुरम और मुंडकन्नीयमन स्थानों में १२,००० बाढ़-ग्रस्त लोगों को पकाया हुआ भोजन दिया गया । बीमन्ना गार्डन के ८० लोगों को सूखा खाद्य पदार्थ दिया गया । चेन्नई के ट्रिप्लिकेन क्षेत्र के २०० परिवारों को चादर, कम्बल और चटाई बाँटे गए ।

४ दिसम्बर, २०१५ की सुबह को मुंडकन्नीयमन क्षेत्र में १२०० लोगों को चाय दी गई ।

७ दिसम्बर, २०१५ को विभिन्न स्थानों में, यथा – पल्लीयकरनाई में ३००, तिरूवल्लूर जिले में २५०, सैदापेठ जयलक्ष्मी नगर में ७००, शोलिंगनल्लूर में १५० और कोसापूर झोपड़पट्टी में २०० लोगों को चिकित्सा-सेवा प्रदान की गई । इसके अलावा नोचीकुप्पम में ३०० बाढ़-ग्रस्त लोगों को पकाया हुआ भोजन दिया गया ।

(२) **रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम, चेन्नई** ने १५ नवम्बर से आरम्भ किए गए राहत कार्य में तिरुवल्लुर, कांचीपुरम और चेन्नई जिले के १४ स्थानों के ११६८० परिवारों को ८,३७१ फुड-पैकेट और ९०९० ब्रेड-पैकेट बाँटे गये ।

(३) **रामकृष्ण मठ, कांचीपुरम** ने कांचीपुरम जिले के १३५० बाढ़-ग्रस्त परिवारों को ६७५० कि.ग्रा. चावल, ११७५ कि.ग्रा. दाल, ७०० चटाई, १७०० चादर बाँटे ।

(४) **रामकृष्ण मठ, नटरामपल्ली** ने ४ दिसम्बर को कांचीपुरम जिले के उत्थीरामेरुर तालुका के मम्बक्कम और तिरुवनाई कोइल स्थानों के १००० बाढ़-ग्रस्त लोगों को पकाया हुआ भोजन दिया गया ।

(५) **रामकृष्ण मिशन, चेंगलपट्टु** ने १७ और १८ नवम्बर को १७०० लोगों को पकाया हुआ भोजन दिया । २१ से २३ नवम्बर को तीन गाँवों के ८४ परिवारों को ७९० कि.ग्रा. चावल, ९० कि.ग्रा. दाल, बिस्कुट पैकेट और दूध पावडर बाँटे ।

रामकृष्ण मठ-मिशन, वृन्दावन ने २० नवम्बर को २०० वृद्धाओं को १००० कि.ग्रा. चावल, १००० कि.ग्रा. आटा, २०० कि.ग्रा. दाल, २०० कि.ग्रा. सरसों का तेल, १०० कि.ग्रा. शक्कर, २०० साबुन टिकिया, ४० कि.ग्रा. कपड़े धोने का पावडर, २० कि.ग्रा. चायपती और ४० कि.ग्रा. दूध-पावडर बाँटे ।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना ने १३ से २६ नवम्बर को ४०० साड़ी और २०० धोती बाँटी गयीं ।

प्रधानमन्त्री द्वारा स्वामी विवेकानन्द की मूर्ति का अनावरण

रामकृष्ण संघ की **मलेशिया** स्थित शाखा-केन्द्र में स्वामी विवेकानन्द की नवनिर्मित १२ फीट ऊँची कांस्य मूर्ति का अनावरण भारत के प्रधानमन्त्री माननीय नरेन्द्र मोदी जी के द्वारा २२ नवम्बर, २०१५ को हुआ । ○○○

श्री रामकृष्ण आश्रम

त्रिवेणी इन्दौर रोड, उज्जैन ४५६००६ (म.प्र.)

फोन : ०७८६९७०५०९५, ०९४२५१९५८७१

ई-मेल : rkashramaujjain@yahoo.co.in

पूर्ण कुम्भ (सिंहस्थ) मेला शिविर- २०१६

स्थान – ज्योतिर्लिंग महाकाल (उज्जैन)

निवेदन

प्रिय मित्र,

उज्जैन का प्रसिद्ध कुम्भ (सिंहस्थ) मेला विश्व का सबसे बड़ा धार्मिक उत्सव है। इस बार यह मेला २२ अप्रैल, २०१६ से २१ मई, २०१६ तक आयोजित हो रहा है। इस महोत्सव में भारत और विदेशों से लगभग १५० लाख तीर्थ यात्रियों और साधुओं के आने की सम्भावना है।

गत वर्ष की भाँति इस वर्ष भी श्रीरामकृष्ण आश्रम, उज्जैन मेला-क्षेत्र में एक शिविर लगा रहा है, जिसमें ऐलोपैथी और होम्योपैथी धर्मार्थ चिकित्सालय होगा, जहाँ तीर्थ-यात्रियों और साधुओं की निःशुल्क प्रारम्भिक चिकित्सा होगी। शिविर में लगभग एक हजार भक्तों और दो सौ साधुओं और स्वयंसेवकों के लिए भोजन और आवास की व्यवस्था की जायेगी। शिविर में दैनिक धार्मिक कार्यक्रमों हेतु मन्दिर और सत्संग पंडाल भी होगा।

सम्पूर्ण शिविर में लगभग १०० लाख रुपये खर्च होंगे। आश्रम इस महान कार्य में उदारहृदय लोगों से दान देने का निवेदन करता है, जैसा कि पहले उन्होंने दिया है। नगद अनुदान राशि भी साभार स्वीकार की जाएगी और प्राप्ति पत्र भेजा जायेगा।

चेक और ड्राफ्ट **एकाउंट-पेयी** होना चाहिए और उसे **श्री रामकृष्ण आश्रम, उज्जैन** के नाम से बनाकर रजिस्टर्ड या स्पीड पोस्ट से भेज दें।

श्रीरामकृष्ण आश्रम को प्रदत्त दान आयकर-धारा १९६१, ८०जी के अन्तर्गत करमुक्त है।

हमारे बैंक एकाउन्ट नम्बर हैं –

स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, उज्जैन – 10574419581 : IFSC – SBIN003028

I.D.B.I. – 08810400001430 : IFSC – IBKL 0000088

धन्यवाद,

प्रभु सेवा में आपका
स्वामी भास्करानन्द
अध्यक्ष